ओ३म्

आर्य युवक परिषद
त्रिनगर दिल्ली-३५

अध्यात्म सुधा

लेखक—
भूदेव वानप्रस्थ
(पूर्व नाम श्री प्रीतमचन्द्र)
वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)
निवास—
१८-डी, मकान नं० ६४६१, कमलानगर, दिल्ली—७

प्रकाशक एवं
पुस्तक प्राप्ति स्थान
अलंकार प्रकाशक एवं वितरक
६. आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)
जिला सहारनपुर (उ०प्र०)

लागत मूल्य २-२५
विक्रय मूल्य १-००

प्रथम संस्करण | आषाढ सं० २०३७
१००० प्रतियाँ | जून. १६८१ | दयानन्दाब्द १५६

भूमिका

जब मैंने अध्यात्म सुधा पुस्तक को लिखने का विचार किया था, तब यह भावना हृदय में थी कि अन्तःकरण की शुद्धि के जो चार साधन हैं जिनकी कभी-कभी विद्वान् लोग सत्संग में चर्चा करते रहते हैं, अर्थात् (स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जाप एवं स्वाध्याय) उनको भी किसी प्रकार से लिखने का प्रयास किया जाय। जो कि सरल भाषा तथा वैदिक सिद्धान्तों क अनुकूल हो। यह चारों विषय बहुत ही महत्वपूर्ण हैं आर इन पर चिन्तन भी जहां बहुत गहरा करने की आवश्यकता थी, उसके लिए पर्याप्त सामग्री वैदिक ग्रन्थों से एकत्र करना भी आवश्यक था।

पहली लघु पुस्तक "स्तुति तथा स्वाध्याय" पाठकगणों को, साधनों को देखते हुए बिना मूल्य ही बांटी हैं। उस पुस्तक में मैंने पहले तथा चौथे साधन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

अब यह दूसरी पुस्तक अध्यात्म सुधा प्रकाशित की जा रही है। जिसमें प्रार्थना तथा उपासना पर अपनी बुद्धि के अनुसार प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

विद्वान् व्यक्ति तो पुस्तक लिखते रहते हैं, उनके लिए कोई भी विषय कठिन नहीं। किन्तु मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के लिए इतने बड़े कार्य को हाथ में लेकर लिखना अति कठिन कार्य था। फिर भी भगवान् की अपार कृपा से दोनों भाग बड़ी ही कुशलता पूर्वक लिखे जा चुके हैं। जाप से सम्बन्धित पुस्तक भी भविष्य में लिखने का प्रयास करूंगा। प्रभु की कृपा से व्यक्ति लंगड़ा भी पहाड़ पर चढ़ने की शक्ति प्राप्त कर लेता है मैं अनेकों परिस्थितियों

विषय-सूची

प्रार्थना प्रकरण

प्रार्थना शब्द का अर्थ	१
प्रार्थना का स्वरूप, विश्वास	२
प्रार्थना क्या है ?	४
प्रार्थना के प्रकार	५
क्या प्रभु प्रार्थना से पाप क्षमा करते हैं ?	८
पाप और अपराध में अन्तर	११
प्रार्थना क्यों करें ?	१३
प्रार्थना में आचरण	१६
प्रार्थना का महत्व	२१
प्रार्थना के विभिन्न प्रकार	२२
प्रार्थना में पुकार	४५
प्रार्थना से अन्तःकरण की शुद्धि	५१
उपसंहार	५२

उपासना प्रकरण

उपासना शब्द का अर्थ	५३
उपासना का समय	५४
उपासना की रीति	५५
उपासना के प्रकार	५६
उपासना किसकी करनी चाहिए ?	५७
उपासना कौन करता है ?	७६
उपासना में भावना	८०
उपासना में आचरण	८८
उपासना क्यों करनी चाहिए	१०
उपासना में बाधक कारण	१०
परमेश्वर को कैसे जानें ?	१०
समर्पण	१२
उपासना का फल	१२
उपसंहार	१२

के बन्धन काट कर कहां से कहां तक पहुँचा यह लिखना अनावश्यक समझता हूँ।

मैंने मवाना शुगर मिल में Assistant Manager का भी कार्य किया।

मैं दिल्ली क्लोथ मिल से सन् १६५८ में रिटायर्ड हुआ उस समय मैं उन के यहां इन्टरनल आडिट आफिसर था। सितम्बर १६-६५ में आर. के. वर्मा तथा मैंने मिलकर अंग्रेजी में Costing in Cottn Textile Industery विषय पर एक पुस्तक लिखी थी। सार्वदेशिक सभा द्वारा संचालित "सत्यार्थ प्रकाश की अनेक परीक्षायें" भी मैंने उच्चतम अङ्कों से उत्तीर्ण की। आर्यवानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में मैंने अपना निर्माण किया। यहीं पर रहकर एक दो संस्कृत की परीक्षा भी पास की पुनः तपोवन देहरादून में २ साल तक अवैतनिक सेवा कार्य करता रहा। अब मैं आर्य वानप्रस्थ आश्रम में रह रहा हूँ।

इस कार्य में श्री डा० जगदेव वेदालङ्कार, श्री इन्द्रदेव, श्री मनुदेव इन्दौर तथा श्री अशोक कौशिक ने भी सहायता की है। एतदर्थ मै इनका अति आभारी हूँ।

विनीत—

भूदेव (प्रीतमचन्द)

आर्य वानप्रस्थ (संन्यास) आश्रम, ज्वालापुर

ओ३म्

॥ प्रार्थना प्रकरण ॥

अन्तःकरण शुद्धि का साधन : प्रार्थना

ईश्वरार्चन के लिये अन्तःकरण की शुद्धि का प्रार्थना नामक दूसरा साधन बताते हुए अति हर्ष हो रहा है। प्रार्थना में यथार्थ का भान कराने हेतु मेरा यह द्वितीय प्रयास है। पहली पुस्तक "अध्यात्म सुधा" नामक प्रकाशित हो गयी है। जिसमें स्तुति तथा स्वाध्याय के विषय में प्रकाश डाला गया है। अब यह लघु पुस्तक आपके हाथ में है। सत्यासत्य का निर्णय करके प्रार्थना करना सभी को अभीष्ट है। प्रार्थना में आप ईश्वर से जो वस्तु मांगें, वह पहले से निश्चित करलें उसका उचित साधन एवं कर्तव्य का पालन करें। वैसे लक्ष्य पूर्ति में स्वयं अपने हाथ का पुरुषार्थ ही सहायक होगा। लेकिन ईश्वर की आराधना से साहस तथा आत्मा की पुष्टि होगी एवं शरीर सशक्त बनेगा।

प्रभु के समक्ष हमने अहिंसा की दृढ़ता मांगी। अहिंसा से जिव्हा की वह लोलुपता जो हिंसा से प्राप्त वस्तु के खाने की थी, प्राय: जड़ से समाप्त हो जायेगी और व्यक्ति पवित्र भावना को लेकर लक्ष्य पूर्ति के लिये प्रार्थना करें और यथार्थता उसके सामने होगी। यदि लेशमात्र भी उसमें असत्य एवं बनावट देखी तो ईश्वर भी बाह्य उपकरण टिप-टॉप को नहीं (जानता) देखता। इसलिये कहा है कि प्रार्थना में दिखावापन

न लाकर सरलता से, स्वच्छ मन से, स्वच्छ स्थान पर बैठ कर प्रभु प्रार्थना करो। अब प्रार्थना का प्रकार, स्वरूप एवं तैयारी की विधि प्रस्तुत है।

स्वरूप:— प्रार्थना हमें अवश्य करनी चाहिये। प्रार्थना शब्द का अर्थ है याचना करना, मांगना। प्रार्थना में हमारे विचार, भावनाएं, मान्यताएं, कल्पनाएं पवित्र हों क्योंकि उसी से संस्कार बनते हैं। संस्कार से कर्म बनते हैं। कर्मों का फल सुख व दुःख के रूप में सामने आते हैं। प्रभु दया तब करते हैं जब मानव स्वयं पुरुषार्थ करता है। जो मनुष्य जिस बात की याचना करता है उसको वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए। जितना जहां तक कर सके, मानव को उतने साधन स्वयं ही जुटाने चाहिएं।

परमात्मा यद्यपि सर्वत्र विद्यमान ही है, तदपि मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार प्रार्थना करता है और परमात्मा के सकल गुणों का वर्णन केवल अनुवाद मात्र है। प्रार्थना करते समय तीव्र भूख हो जैसे एक बच्चे को माँ रोटी खाने के लिये पुकारती है, वह खेल में मस्त है। वह नहीं खाता है, हालाँकि खाने का समय हो गया है। जब बच्चा खेल कर वापिस आता है और उसे भूख लगी होती है तब मां उस समय घर का जो काम कर रही होती है उसे छोड़ देती है। जैसे बालक अपनी भूख की तीव्र ज्वाला से बेचैन होता है ऐसे ही हम प्रभु के सामने आंसू बहाकर अपने को थका कर प्रभु से प्रार्थना करें।

विश्वासः—मनुष्य की साधारण अवस्था विश्वास की अवस्था है। विश्वास क्रिया की नींव है। हमारी क्रिया हमा

विश्वास पर निर्भर है । हमें किसी यथार्थ विश्वास को ही अंगीकार करना उचित है । प्रभु की प्रार्थना में विश्वास एवं भावना का बड़ा महत्त्व है और वह भी सब संशयों का निवृत होना उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना हृदय के पवित्र भाव होंगे उतना ही श्रेयस्कर है। अर्थात् प्रार्थना में केवल हृदय ही सहायता देता है[1] । ईश्वर पर विश्वास कर प्रार्थना करें तो अवश्य फल प्राप्त होगा[2] ।

उदाहरण—एक बार अमेरिका में वृष्टि नहीं हुई और वहां हाहाकार मचने लगा। अकाल की स्थिति पैदा हो गई। उस भयंकर स्थिति को देखकर वहां के राष्ट्रपति ने एक अपील में लोगों से कहा कि रविवार को एक विशाल मैदान में बड़ी सभा होगी और सब आदमी इकट्ठे हो जायें। इस सभा में एक बालक छाता लेकर आया और उसके साथ अन्य लोग नाना तरह का मजाक करने लगे और कहा कि हम तो भगवान् से वृष्टि के लिये प्रार्थना करने आये हैं और तू छाता लेकर क्यों आया है ? बालक चुपचाप रहा। जब पादरी साहब पहुँचे और वृष्टि के लिये प्रार्थना कर चुके और राष्ट्रपति पादरी साहब का धन्यवाद कर चुके, तब वही बालक एकाएक बड़े स्वर से मंच पर खड़े हो कर बोला, "भगवान् आप तो बड़े दयालु हैं,

---

१ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वे संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥
(मुण्डक उ० दूसरा मण्डल खंड २ मंत्र ८)

२– त्वं हि सुप्रतूदसि त्वं नो गोमती रिषः ।
महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥ ऋ० ८-२३-२९

वृष्टि करो, देर न करो। क्योंकि सब ऐश्वर्य आपके आधीन है। कुछ ही क्षणों में बादल गरजने लगे और वृष्टि होने लगी। तब बालक ने कहा कि अब छाते की आवश्यकता है।

भावना क्या है ?

मनुष्य की प्रार्थना के अन्तर्निहित वृत्ति का नाम भावना है। भावना मनुष्य के अनेकों जन्मों के सञ्चित संस्कारों का प्रभाव है। ऐसी भाव भरी प्रार्थना में ही भावना प्रकट होती है। जैसे "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।" प्रार्थना हो या अन्य कोई भी कार्य हो, उसमें जैसे जिसकी भावना निहित होगी उसकी वैसी ही सिद्धि होगी। मनुष्य बाहर से कितना भी धार्मिक एवं भक्त हो लेकिन उस भक्ति में जो स्वार्थ भाव भरे हैं, उसकी वैसी ही सिद्धि होगी। एक ही माता के दो बेटे हैं। दोनों के विचार भिन्न होते हैं। क्यों ? माता दोनों को एक दृष्टि से देखती है; लेकिन एक के अन्दर चोरी के संस्कार हैं दूसरे के अन्दर विद्याध्ययन के संस्कार निहित हैं; तो दोनों की भावनायें अलग अलग हैं। दोनों की प्रार्थना करने की उड़ान एक है, लेकिन प्रार्थना में दोनों की भावनायें भिन्न हैं दोनों के अलग–२ मार्ग बन रहे हैं। उसका कारण यह है कि भावना पूर्वकृत जन्म - जन्मान्तरों के किये कर्मों के परिणाम स्वरूप भिन्न हो गई। यह स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति के आहार व्यवहार से लक्षित हो जाती है। यह भावना उस सर्वनियन्ता परमात्मा के चिन्तन से पवित्रता प्राप्त करती है। जो पवित्र भावना से प्रार्थना करता हुआ पुरुषार्थ करता है, उसकी इच्छित कामना को प्रभु स्वीकार करके पूर्ण करता है। और उसे अपने निकट ले लेता है। वह व्यक्ति भी प्रभु को अपने चहुँ ओर समझता है।

प्रार्थना में भावना कैसी हो ?

प्रभु एक परम पवित्र चेतन सत्ता और आनन्द स्वरूप है। उसके पास जाना है तो प्रेमभाव और पवित्रता चाहिए। यह पवित्रता बाहर से नहीं अन्दर की होनी चाहिए। अन्दर की पवित्रता वह है जो विचार व्यक्ति करता है उन बिचारों को अपने तक ही सीमित न रखकर समाज एव विश्वहित की राह पर छोड़ दे। उस के साथ जो भावना होगी वही भावना प्रार्थना में रक्खे जैसे अद्यतन प्रवृत्ति के कुछ लोगों को छोड़कर भाई बहिन के साथ, बहन भाई के साथ जो विचार रखते हैं वही विचार सड़क पर चलते हुए भाई और बहिनों के साथ रक्खे तो उससे भावना पवित्र हो जायेगी। यह एक अंग है। उसी भावना को उस प्रभु के पास जाकर प्रकट करें। ऐसी भावना प्रार्थना करते समय अपने समक्ष रक्खे ।

प्रार्थना के प्रकार

एक अपने लिये और दूसरी अन्यों के लिये। प्रार्थना में हमारी कामनायें शुभ होवें। ऐसी प्रार्थना को प्रभु देव सुनते हैं। जो प्रार्थना ससार के लिये हानिकारक है, ऐसी प्रार्थना करनी नहीं चाहिए, और न परमेश्वर उसको स्वीकार ही करते हैं। परमेश्वर सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होते हैं, हानिकारक प्रार्थना में नहीं।

जो भक्त शुभ और अशुभ का विचार करके प्रार्थना करता है वही सदैव प्रभु का प्रिय बन जाता है, उसके कर्म भी

शुभ ही होने लगते हैं। अतः जो अन्दर से प्रेरणा मिलती है, उसी प्रकार उसका आचरण भी पवित्र होकर संसार को मार्ग दिखाने वाला होता है। सारी इन्द्रियां प्रार्थना के अनुकूल कार्य करने लगती हैं क्योंकि उसके द्वारा सारी इन्द्रियों को शक्ति मिल रही है। मेरे दिल के अन्दर भाव दूसरे रूप से वायु मण्डल में उसके जो चिन्ह है, उसके अपने हृदय पर पड़ते हैं। जैसे किसी रास्ते पर हम चलते हैं, वहां पर जो चिन्ह हमारे पैरों से पड़ते हैं कुछ समय के बाद वहां एक पगडंडी सी बन जाती है। जो कि यह एक संस्कार है।

जो कुछ अच्छा सोचता है उसकी भावनाएं सब फैलती हैं। जैसे रेडियो की आवाज इंगलैंड से यहां तक सुनते हैं तथा टेप रिकार्ड को लीजिए जो हम बोलते हैं, वह सब कुछ जैसे मानव के शब्द कहे गये हैं। वह सब आवाज के रूप में नहीं बल्कि एक लहर के रूप में यानि वेव करन्ट होती है। इसी प्रकार हमारे शरीर में आत्मा है उसके ही द्वारा हमारी इन्द्रियों की शक्ति काम करती है। आत्मा जो बोलती है। अच्छा या बुरा उसको हम स्थिर करते हैं। कल्पना करो कि मेरे चारों ओर बैठने वाले बुरा विचार करते हैं। वह सब बुराई के चिन्ह मेरे ऊपर टकराते हैं। जिन लहरों का झुंड अधिक होता है। उन्हीं की विजय होती है। न कि मेरे अकेले के द्वारा कहे गये। यह ठीक है कि महर्षि स्वामी दयानन्द जी जब प्रचार के मैदान में उतरे थे क्या वह ठीक नहीं कह रहे थे ? इसमें अन्तर हैं। कल्पना करो मेरी आयु ६० वर्ष की है, मेरे घर में चार सदस्य हैं। क्या वे सब समान विचार वाले है ? कदापि नहीं। विजय

की प्राप्ति वहीं है जहां एकता है। वहां जहां विचारों में शक्ति है तथा जब उसके चारों ओर अनुकूल वातावरण हो तभी उसे विजय होती है।

सामूहिक प्रार्थना कल्याण भावना से हो, सब की कामनाओं के लिए ही हो इसका बहुत महत्व है, जबकि सद्भावनाओं से ही हो। जो संसार में अधिक मूल्यवान वस्तु होती है, उसका प्रयाग भी सब प्रकार का ज्ञान होने पर किया जाता है। वैदिक प्रार्थना की यही विशेषता है यह सब के कल्याण के लिये ही करते हैं। यह बहुत अच्छा है।

ईश्वर से प्रार्थना, धर्म कार्य, पूजा, अर्चना, सत्संग, स्वाध्याय, सेवादि सन्त समागम द्वारा अपने दोषों और दुर्गुणों को दूर करें। इसी से हमें धर्म का प्रकाश प्राप्त होता है।

प्रार्थना जब करें वह सब के कल्याण के लिये हो, न केवल अपने लिये अपितु समाज तथा राष्ट्र और विश्व कल्याण के लिये हो, व्यक्ति से समाज बनता है। समाज से राष्ट्र बनता है। ऐसा करने से ही सब का कल्याण होता है। मैं भी सुखी रहूँ, परिवार भी, समाज भी तथा राष्ट्र भी यह सब हर तरह से भर पूर हों। मेरे निकटवर्ती तथा दूरवर्ती सभी मंगलमय हों।

वाणी से जो प्रार्थना की जाती है वह दूसरे लोग तो सुन सकते हैं लेकिन प्रभुदेव तो वही सुनते हैं जो मानव अन्दर

के हृदय की पवित्र भावना से करता है।

क्या प्रभु प्रार्थना से पाप क्षमा करते हैं ?

कदापि नहीं। हम प्रार्थना करते हैं खुशामद के तौर पर वास्तव में जो जैसा है वैसा कहना न कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये करते हैं, वह प्रार्थना नहीं बल्कि वह खुशामद है।

प्रभु स्वार्थ भरी प्रार्थना को कभी नहीं सुनता न फल ही प्रदान करता है - जैसे एक गांव में एक धोबी और कुम्हार रहते थे। धोबी के पास गधे थे और कुम्हार के पास घोड़े। एक दिन दोनों में कुछ मन मुटाव किसी कारण से हो गया तो धोबी कुछ कमजोर था इसलिए परमात्मा से सहारा मांगते हुए प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभु ! इस कुम्हार का घोड़ा मार दे। बहुत दिन बीत गये कुछ नहीं हुआ एक दिन अचानक धोबी के गधे को कुछ हुआ और मर गया तो परमात्मा को कोसते हुए कहने लगा-हे खुदा तुझे खुदाई करते-करते लाखों वर्ष गुजर गये लेकिन तुझे गधे और घोड़े की भी अकल नहीं मैंने कहा था घोड़ा मार दे तूने मेरा गधा ही मार डाला।

इसलिए प्रार्थना में अपने लिए लेशमात्र भी कुछ नहीं होना चाहिए प्रार्थना पुरुषार्थ से युक्त हो वही सार्थक होती है।

प्रार्थना करके हम अपने पापों को छुड़ाना चाहते हैं। कोई हाथ पसार कर प्रार्थना करता है, कोई पैर छू कर, कोई पैर पसार कर, कोई खुशामद करके, कोई बड़ी बड़ी

बातें करके दूसरों के सामने करता है। इससे उसकी इच्छा किसी हद तक जिससे वह मांगता है वह पूरी कर देता है। लेकिन भगवान् किये हुए पापों का फल अवश्य ही देते हैं। यही उसका न्याय हैं। बिहार प्राप्त में तथा बंगाल, मथुरा, बृंदावन में श्री कृष्ण जी की लीला के रूप में भक्ति करते हैं। हर एक आदमी अपनी रुचि के अनुसार भक्ति करता है। रूप अलग अलग हैं। लेकिन उसके द्वारा मानव अपने पापों को किस तरह से छुड़ाने का प्रयत्न करता है। हमारी बुराई, पाप सब खत्म हों। सब यही चाहते हैं। आगे के लिये पाप न करें। अतः जब तक हम अपना जीवन न सुधारेंगे, जिससे अगले पाप जो हमने अभी तक नहीं किये हैं, उन बुरे कर्मों को आगे न करें। यही मानव का पुरुषार्थ है, जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष को दूसरा आदमी सहारा दे देता है, वैसे धर्म के कार्य से पुरुषार्थी पुरुष को सहारा ईश्वर भी देता है।

इस मन्त्र का आशय यह है कि, अपने स्वभाव द्वारा किया हुआ कर्म ही पाप की ओर नहीं ले जाता किन्तु जीव की प्रकृति, स्वभाव, मन्द कर्म, अज्ञान, क्रोध, ईश्वर का नियमन यह पांच जीव की सद्गति या दुर्गति के कारण होते हैं। जैसे कि कोषीतकी उप० में वर्णन किया है कि "एष एव साधुकर्म कारयति तं यमधोनिनीयते" (कौ०३/३/८) इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर पूर्वकृत कर्मों द्वारा फल प्रदाता हैं और उस फल से स्वयं सिद्ध श्रेष्ठता अथवा निम्नता आ जाती है। जीव के स्वकृत कर्म ही उसकी उन्नति अथवा अवनति का कारण होते हैं। इसी भाव से जीव को कर्म करने में स्वतन्त्रता और फल भोगने में परतन्त्र माना है। कर्मानुसार फल देने से ईश्वर में

कोई दोष नहीं आता है[1] । हे प्रभो! प्राणिमात्र के कर्मों का फल देने वाले आप हैं, कभी किसी के कर्म को निष्फल नहीं करते न किसी निरपराध को दण्ड ही देते हैं । किन्तु इस जन्म और पूर्वजन्म में सब आपकी व्यवस्था से अपने कर्मानुसार फल को भोगने वाले बनते हैं[2] ।

अब हम उस परमात्मा के नियमों का पालन करते हुए प्रार्थना करते हैं तभी वह हमारे ऊपर दया कर सकता है। अन्यथा नहीं । इसका समाधान ऋग्वेद का मन्त्र है "पक्तारं पक्व: पुनरा विशाति" जो जैसा पकाता है उसको वैसा ही फल मिलता है । मानव अपनी मूर्खता, निर्बलता, दुर्भाग्य, अल्पज्ञता के परिणामस्वरूप हर हालत में यह उसे इस कठिन क्रिया के सहयोग बना देती है और अधिक संख्या की हालत में सांसारिक विषय भोग विलास इसे अपनी ओर खींच लेते है। आत्म-सिद्धि के लिये कुछ बच नही रहता। यह प्रमाद ही है । जो दुर्भाग्य का कारण है। उसे विवेक से करने की प्रज्ञा जो प्राप्त थी वह रुक जाती है। परमात्मा उसको सन्मार्ग सुझाता है। मृत्यु दण्ड देकर पाप करने का फल भुगतान करवाता है। अत: परमात्मा पापों से छुटकारा करवाता है।

---

१ न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥
ऋग्वेद ७–८६–६

२ कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र: सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥
सामवेद पू० ४/१/१/८

दया और न्याय में अन्तर

न्याय कर्म की अपेक्षा रखता है। यदि कोई पुरुष कर्म न करे, तो कोई न्यायाधीश न्याय नहीं कर सकता। न्याय कर्म के फलाफल देने का नाम हैं।

दया के लिए कर्म की अपेक्षा नहीं है। दोनों में जो अन्तर है, वह स्पष्ट हो गया कि, न्यान के लिए कर्म की अपेक्षा है, परन्तु दया के लिए कर्म अतेक्षित नहीं है।

पाप और अपराध में अन्तर

पाप का सम्बन्ध मन तथा आत्मा के साथ है। अपराध का सम्बन्ध शारीरिक है। जैसे मन में चोरी करने का निश्चय किया, बुद्धि से उसका निर्णय किया, आंखों से देखा और हाथों ने चुराया। जब मनन किया था उस समय तक पाप का क्रियात्मक रूप नहीं था। जब इन्द्रियों के द्वारा मनन किये कार्य को परिणित कर दिया तो वह अपराध हो गया। जब मन में चोरी करने का भाव आया था उसको वहीं रोक दिया जाता तो उसको प्रार्थना करके पश्चात्ताप से दूर किया जाता है, जब चोरी ही कर ली तो उसका फल राज दण्ड हो गया।

परमात्मा किसी को पाप या पुण्य कर्म करने की प्रेरणा नहीं देता। जीव स्वयं ही पाप पुण्य का करने वाला है। परमात्मा यथायोग्य फल प्रदाता है। यदि मनुष्य पाप करता है तो उसके पश्चात्ताप एवं कठोर प्रायश्चित्त करने से मुक्ति होती है। परमात्मा ने उसको स्वतन्त्र कर दिया लेकिन वह प्रभु उसके किये कर्मों का संचय करता रहता है। उन्हीं का

भोग वह यथा अवस्था पर शुभ या अशुभ सुख या दुःख दिया करता है। न वह पाप में लिप्त करता है न वह मुक्ति देता है। वह अपनी न्यायकारिता से मुक्त या बद्धता प्रदान करता है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि मनुष्य पापी क्यों हो जाता है? उसको पाप करने की प्रेरणा परमात्मा ही देता होगा, जब वह पाप से मुक्त करने वाला है तो पाप में लिप्त करने वाला भी वही है?

उत्तर—मनुष्य अल्पज्ञ है। परमात्मा सर्वज्ञ है। मनुष्य संसार में फल भोगने और आगे के लिये कर्म करने के लिये आता है। जो भोग उसे मिलते हैं वह उन भोगों में मस्त हो जाता है। उसे सांसारिक सुखों के भोगों से अल्पज्ञता से कारण ज्ञान नहीं रहता कि मैं पाप कर रहा हूँ या पुण्य, इसलिए पापी हो जाता है।

किन्तु नहीं, परमात्मा कभी किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। वह सदैव सब के साथ एक जैसा व्यवहार करता है। एक गृहस्थ युगल विवाह करके स्वच्छन्द स्थिति में रहते हैं। पति अधिक विषयी है या पत्नी या दोनों एक जैसे हैं। तो परिणाम सन्तान रूप उन्हें प्राप्त होता है। जब स्त्री गर्भवती है तो भी अपनी आदत से लाचार होकर एक दूसरे का संसर्ग करते हैं तो सन्तान का ह्रास हो गया, दोनों ने पाठ पूजा की उसके परिणाम में बच्चा हुआ, तो मर गया, उन्होंने परमात्मा पर दोष मढ

प्रदत्त दान द्वारा—श्री सत्यपाल, १८ डी, मकान नं ६४९१,
कमलानगर, दिल्ली—७

दिया। परमात्मा पक्षपाती है किसी को सन्तान बहुत दे दी हैं। मुझे दी थी, सो बीच में ही ले ली। परमात्मा को कोई गाली भी सुनाता है। दोषी व्यक्ति जब अपनी शक्ति से बाहर कार्य देखता है तो किसी अन्य को दोषी ठहराता है।

प्रार्थना क्यों करें ?

परमात्मा ने हमको वेद द्वारा कहा है कि तुम मेरे से सत्संग की प्रार्थना करो, जिससे तुम्हारा मनुष्य जन्म सफल हो। बिना तप के श्रद्धाहीन, महामलीन, पराधीन, नीरस, विषयों में लवलीन व्यर्थ बकवाद करने वालों को कुछ भी लाभ नहीं होता[1]।

संसार में उच्च कोटि के, नीच कोटि के और मध्यम कोटि के सब मनुष्य उस सर्व शक्तिमान् जगदीश की प्रार्थना करते हैं। तथा मार्ग में चलने वाले और अपने कर्तव्य कर्मों में लगे हुए, अपने घरों में निवास करते हुए उस परमेश्वर को पुकारते हैं। युद्ध करने वाले पुरुष भी, अपनी विजय चाहते हुए, उस प्रभु को स्मरण करते और बुलाते हैं। तथापि अधिकतर संसार में धान्य बलादि की इच्छा करने वाले सब नर-नारी, उस परम पिता के सम्मुख याचना करते है। परमात्मा सब की पुकार सुनते और उनकी यथायोग्य कामनाओं को पूरा भी करते हैं[2]।

१—अधा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आगहि ॥ १—ऋ० १-४-३ ॥

२ इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम्।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥
ऋ० ४-२५-८ ॥

क्योंकि बड़े राजा-महाराजादि भी उसी से भिक्षा मांगते हैं, हम भी उस से सब के दाता परमात्मा से इष्ट पदार्थ मांगते हैं। प्रभु से ही याचना करते हैं कि वह समस्त शक्ति वाला है। यही परमेश्वर की आज्ञा है तुम मुझ से मांगो, वही प्रार्थना करने योग्य है[1]।

जो एक बार मेरी शरण में आकर मैं तुम्हारा हूँ ऐसा कह कर मुझ से रक्षा की प्रार्थना करता है उसे मैं समस्त प्राणियों अभय कर देता हूँ। सदा के लिये यह मेरा व्रत है[2]।

प्रत्येक प्राणी के हृदय में कामनाओं का समुद्र लहरें लेता है। जहां कमी हो वहां पूर्ति होनी चाहिये। हमारी कामनायें मनघडन्त, व्यर्थ व हानिकारक न हों, जो समाज, या पड़ोसी तथा राष्ट्र की भलाई के लिये हों ही। वही हमारी प्रभु सुनते हैं। कोई प्राणी परतन्त्र नहीं है सब स्वतन्त्र हैं। उनकी कामनाओं को सर्व व्यापक प्रजापति जानता है और सर्वशक्तिमान् होने के कारण पूर्ण भी करता है। अतः उस प्रजापति परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये[3]।

यहां परमात्मा स्वयं आज्ञा देता है कि मेरी अर्चना करो। और मुझ को विहायस् - महान् व्यापक और दम्य - गृहपति

---

१ न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥
ऋ० ७-३२-२३ ॥

२ गीता अध्याय १०, श्लोक ८ ९,१०

३ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
ऋ० १०-१२१-१० ॥

समझो। अर्थात् मुझको परिवार में ही सम्मिलित समझो।[1]

ईश्वर में सब पदार्थ अतिशय हैं; वह कितना महान् है—यह मनुष्य की बुद्धि में नहीं आ सकता; उसके निकट कितना धन है उसकी न तो संख्या हो सकती है और न मानव मन ही वहां तक पहुँच सकता है। अतः उसके साथ महान् आदि शब्द लगाये जाते हैं। इस ऋचा से यह शिक्षा होतीहै कि जब वह इतना महान् है तब उसको छोड़कर दूसरों से मत मागों। गौ, अश्व और रथ आदि पदार्थ गृहस्थाश्रम के लिये परमोपयोगी हैं; अतः इनकी प्राप्ति के लिये बहुधा प्रार्थना आती हैं।[2]

इसमें सन्देह नहीं कि उसके धन का अन्त नहीं है। ईश्वर के समान हम उपासक उससे अपनी आवश्यकता निवेदन करें और उसी को इच्छा पर छोड़ देवें।[3]

ईश्वर स्वयं पीण है; उसको जो तुम दोगे उसके बदले में वह भी कुछ तुमको देगा। अतः उसकी सेवा करो।[4]

---

१ नूनमर्चं बिहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत्॥
ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये॥ ऋ० ८-२३-२४॥

२ गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया।
वरिवस्य महामह॥ ८-४६-१०॥

३ नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा।
दशस्या नो मघवन्नूचिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ॥
ऋ० ८-४६-११॥

४ ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः।
आ त्वां पणिं यदीमहे॥ ऋ० ८-४५-१४॥

ईश्वर से लोग याचना करतेहैं परन्तु उसके दान लोग नहीं जानते हैं। उसकी कृपा और दान अनन्त हैं। वह सुवर्णमय रथ देता है जो शरीर है इससे जीव सब कुछ प्राप्त कर सकता है उसका धन्यवाद दो। परमेश्वर सुख स्वरूप है – उनसे ही सुखों से युक्त ऐश्वर्य की याचना करना उचित है। सुख स्वरूप परमेश्वर के गुणों का अध्ययन करने से मार्ग दर्शन मिलता है और यह समक्ष प्राप्त होती है कि वास्तविक ऐश्वर्य कैसे प्राप्त होता है।2

परमदयालु परमात्मा मनुष्यों को वेद द्वारा उपदेश देते हैं—हे मेरे पुत्रों मैं सब धनों का स्वामी हूँ, मेरे अधीन ही सब पदार्थ है जैसे बालक अपने पिता से माँगते हैं, वैसे ही सब मनुष्य मुझ से मांगते हैं, सबका दाता मैं ही हूँ। परन्तु दानशील मनुष्य को मैं विशेष रूप से धनादि पदार्थ देता हूँ, क्योंकि वह दाता सदा उत्तम कर्म में ही धन को खर्च करता है।3

प्रार्थना में आचरण

परमेश्वर को ही हम गुरु माने और अराधना मात्र में उसी की दया और सहायता की याचना किया करें। प्रार्थना में

---

१ दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः।
रथं हिरण्यं ददन्मंहिष्ठः सुरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः॥
ऋ० ८–४६–२४॥

२ अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम्।
प्रयन्ता बोधि दाशुषे॥ ऋ० ८–६३–२१॥

३ अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम्॥
ऋ० १०-४८-१

नाना प्रकार की मानव कल्पनायें करता है। हम स्तुति के द्वारा बड़ो से प्रार्थना करते है। वैसे ही आचरण करें। वैसा ही पुरुषार्थ करें। प्रार्थना में अपने हृदय को मजबूत बनावें कि इतनी दृढ़ता हो जाये कि उस पाप को काटने का उपाय हम अपना लवे। अर्थात् सुख-दुःख की क्षमता हम बना लें। प्रार्थना में हम नम्र बन जायें। जैसे फल पक कर सबको लाभ देता है, वैसा ही हम भी उस फल की तरह झुक जायें। जो मेरे पास है उसमें लगाव न करें। श्री ज्वाहार लाल जो कहते थे कि चीन और हमारे बीच में हिमालय पर्वत है। हम बेफिक्र हैं। जो हुआ वह सब जानते हैं। ठोकरें खा कर मानव सावधान होता है। जो तीन बार पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया हम कामयाब हुये। काशमीर का मामला ३३ साल से वैसे का वैसा अटका हुआ है। भगवान् केवल मदद करता है तू प्रयत्न कर।

अरे पाप मेरे पास से दूर चला जा, पाप तथा बुराई कहां से आई, आप क्यों नहीं चली जाती। संभल कर चलना यानि सब विचार पूर्वक कार्य करना ही उचित है।

प्रार्थना में अहंकार मत आने दो, पल भर में भगवान् प्रलय कर देते हैं। बड़े बड़े चक्रवर्ती राज्य डगमगा जाते हैं। जिसने दिया है उसे भगवान् इस दुनिया से उठा भी सकते हैं, क्या हमें नही उठायेंगे। हां उठायेंगे।

प्रभु की प्रार्थना मे हम उदार दिल वाले बनें।

प्रदत्त दान द्वारा—श्री सुधाकर सिंघल, १६ नीलिमा पार्क सोसायटी, नौरंगपुरा, अहमदाबाद (गुजरात)

सब कुछ उसका ही तो धन ऐश्वर्य है। हम उदारता-पूर्वक दान की भावना अपनावें। प्रार्थना में हम उस प्रभु के अधिक नजदीक हो जावें। ऐसा करने से हमारा मन शुद्ध, निर्मल हो जाता है। और भविष्य म धर्म भंग होने की सम्भावना कम हो जाती है। जब तक हम पास ना बैठें तब तक प्रार्थना कैसी? वह हमारी माता है। जैसे माता पालन करती है। वैसे ही सब पदार्थ प्रभु ने हमारे लिये बनाये हैं। उन सबका स्वामी वही है। हमें विश्वास हो कि वह हमारे अंग अंग में व्याप्त है। वह सबको भोग पदार्थ ठीक समय पर प्रदान करता है। बहुत देना है। हमें भी अवश्य ही देगा। उसका हम अपमान न करें। वह हमारे लिये अनेक वस्तुएं प्रदान कर रहा है। लेकिन सन्तोष नहीं, वह हमें स्वयं अपने अन्दर पैदा करना होगा। भगवान् को बुलावें। योगी को दर्शन के रूप में व स्पर्श के रूप में अनुभूति होती है। साधारण पुरुष को प्रेरणा के रूप मे प्राप्त होती है। भगवान् की प्रार्थना में पुरुषार्थ करके थका लेवें। प्रार्थना मे मांगना होता है। मांगते उसी से हैं जो कि महान् है, क्योंकि उसके भण्डार सदा भरपूर हैं।

प्रार्थना अभिमान रहित होवे और ज्ञान सहित पोवे-हम प्रार्थना करते समय अपने आप को अधिकारी बनावें—तब प्रभु सुनते हैं।

उदाहरण:—एक पिता है, लड़का उसका कहना नहीं मानता है। न आज्ञाकारी तथा सेवा भी नहीं करता है। ऐसे

प्रदत्त दान द्वारा—श्री दिवाकर गुप्ता, २४ राजवाड़ा चौक इन्दौर, (मध्य प्रदेश)

बालक को पिता अपनी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं बनाता। यहां तक हो जाता है, पिता अखबारों में विज्ञापन भी देता है। इस लड़के से मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है। अगर कोई इसको कुछ देगा तब मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं होगी। जीवन में कभी कभी ऐसे दिन भी देखने में आ जाते हैं कि सब तरफ से निराशा ही निराशा हो जाती है। लेकिन तू अपनी सन्तानों को कभी किसी अवस्था में निराश नहीं होने देता।

प्रार्थना में प्रभु के उपकारों का स्मरण करें। निरन्तर तुम मेरे पास रहते हो, तथापि मैं कभी तुम्हें जान नहीं पाया, तुम मेरे सम्मुख रहते हो, फिर भी मैं कभी तुम्हें समझ नहीं सका। सदा से तुम मेरी सरांव संभाल करते रहते हो, तब भी मैं तुम्हें पहचान नहीं पाया। यह कैसी विडम्बना है, इस परम लीला को कैसे समझूं। तुम कैसे अनोखे दानी हो कि अग्रसर

दान देते रहने पर भी सदा अप्रकट ही रहना चाहते हो। अनन्त हित साधन करते रह कर भी अज्ञात ही रहना चाहते हो। निरन्तर प्रेम–वितरण करते रह कर भी संगोपित ही रहना चाहते हो, तुम से अनगिनत उपहार प्राप्त करके भी मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ नहीं हो सका। तुम से अनेक बार उपकृत हो कर भी मैं तुम्हारे सम्मुख नतमस्तक नहीं हो सका। तुम्हारे अनन्त सौहार्द्र पूर्ण प्रेम व्यवहारों का पात्र बन कर भी मैं तुम्हारे चरणों में न्यौच्छावर नहीं हो सका।

तुम्हारे प्रेम का प्रतिपादन तो दूर रहा, मैं तो तुम से अनजाना बना रह कर तुम्हें विस्मृत किये रहा; तुम्हारी

उपेक्षा किये रहा। किन्तु मेरी नीरसता, उदासीनता एवं प्रेम-हीनता का तुम पर तनिक भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। सदा तुम्हारे रस समुद्र में मेरी नीरसता को आत्मसात करने के लिये ज्वार आते रहे। सदा तुम्हारे उल्लासमय दर्द मेरी उदासीनता को तिरोहित करने के लिये अपनी प्रेम धारायें बरसाते रहे।

जब जब मैं तुम्हारे द्वार पर कृपा के लिये पुकार की, तुम वैसे ही प्रेमातुर बने मुझे अपनाने को तत्पर दिखाई पड़ें, मेरी विस्मृति, उपेक्षा तथा विमुखता के फलस्वरूप तुम्हारे प्रेम-मय स्वरूप में अकृपा की क्षीणतम रेखा भी कभी उत्पन्न नहीं हो सकी, तुम्हारे सदृश विलक्षण प्रेमी त्रिभुवन भर में कहीं दूसरा नहीं। मैं तुम्हारे प्रेममय स्वभाव का बखान किन शब्दों में करू।

यदि सब प्रकार से समृद्धशाली बनने की लालसा है तो यज्ञ द्वारा देवों को प्रसन्न करो। देवता ही सुख और ऐश्वर्य का मार्ग दर्शाते हैं, यही वेदों की आज्ञा है।[1] हमारे वाह्य और आन्तरिक शत्रु हैं उनको सदैव दबा रखने के उपाय सोचें और अपने बुद्धि पूर्वक कर्मों को ईश्वर प्रार्थना से शुद्ध और पावन बनावें।[2]

हे मनुष्यो! परमात्मा के न्याय से डरो और अपनी

---

१ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानं च वर्धय॥ अथर्ववेद १९–६३–१

२ ऋग्वेद ८–६०–१२

निर्मलता के लिये उसी के निकट अर्चना करो ।1

ईश्वर की प्रार्थना, उस पर पूर्ण विश्वास और जगत में पूर्ण उद्योग करके सब कोई सुखी होवें। दीन हीन रहना एक प्रकार का पाप ही है। अतः वेद में बार बार धन के लिये प्रार्थना आती है। भिक्षावृत्ति की चर्चा वेद में नहीं है। यह भी पाप ही है।2 मनुष्य प्रथम अपने को शुद्ध सत्य और उदार बनावे तब ईश्वर के निकट याचना करे।3 परम प्रभु ने संसार में सकर्मी को जो भोग साधन प्रदान कर रखे हैं, वे सब साधन इन प्रयोजनों से दिये हैं कि उपभोक्ता स्वयं दानशील बने।4

यह साधक तेरा ही है; जैसे कपोत कपोती के समीप उसकी देखभाल के लिये रहता है वैसे ही हमारी प्रार्थना को आप प्रेम से सुनिये।5

प्रभु की सृष्टि में अनेक जड़ - चेतन, मूर्त - अमूर्त दिव्य गुणी पदार्थ विद्यमान हैं, वे हमें सुख देते हैं, बशर्ते कि हम सावधान होकर उनकी देन को स्वीकार करें।6

प्रार्थना का महत्व १

मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता, पर प्रार्थना

१ ऋग्वेद मं० ८ सू० ६० मंत्र १४
२ ऋ० ८-६१-७ ॥
३ ऋ० ८-४४-६ ॥
४ ऋ० ८-४६-२७ ॥
५ सामवेद पू० अ० २ दशतिः ६ खण्ड ७ मन्त्र ६ ॥
६ ऋ० ८-८३-१ ॥

के बिना मैं पागल हो जाऊंगा । प्रार्थना भोजन की अपेक्षा करोड़ गुनी अधिक उपयोगी है । खाना भले ही छूट जाये लेकिन प्रार्थना न कभी छूटनी चाहिये । यदि हम पूरे दिन ईश्वर का चिन्तन, जप किया करें तो बहुत ही अच्छी बात है। पर चूंकि यह सबके लिये सम्भव नहीं । इसलिये प्रतिदिन कम से कम प्रात: व सायंकाल ईश्वर स्मरण करना चाहिये। परलोक की बात तो जाने दीजिये, इस लोक के लिये प्रार्थना सुख शान्ति देने वाले साधन हैं।

अतएव यदि हमें मनुष्य बनना है तो हमें चाहिये कि हम जीवन को प्रार्थना द्वारा रसमय और सार्थक बना डालें । इसलिए मैं आपको सलाह दूंगा कि आप प्रार्थना से भून की तरह चिपटे रहें । मेरे सामने आने वाले राणिय, सामाजिक अथवा राजनैतिक विकट प्रश्नों की गुत्थी के सुलझाने में हमें अपनी बुद्धि की अपेक्षा अधिक स्वष्टता और शीघ्रता से प्रार्थना द्वारा विशुद्ध हुए अन्त:करण से मिल जाते है।

प्रार्थना के विभिन्न प्रकार

हम भगवान् से सहायता चाहते हैं, हम अपने लक्ष्य, ध्येय उद्देश्य की पूर्ति के लिये आगे बढ़ते रहें । आप सब दु:खों के नाश करने वाले हैं। हे प्रभु ! आप हम पर ऐसी कृपा करें कि हम किसी से द्वेष न करें। हमें सब पापों से पृथक् होकर संसार में परम सुख को शीघ्र प्राप्त करें और मुक्त हो जायें।

हे सर्वव्यापक, अनन्त पराक्रमेश्वर विष्णु। आप हम को अनन्त सुख देओ। जो कुछ मांगेंगे सो आप से ही हम लोग याचना करेंगे । सब सुखों को देने वाला आपके अतिरिक्त कोई

नहीं है। सर्वथा हम लोगो को आपका ही आश्रय है अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयामय, सबसे बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते, सो आप सदैव हमको सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है[1]।

हे सोम! कौन सा ऐसा कारण है कि हम आपको चाहते हैं, आप से याचना, प्रार्थना करते हैं। आप हमारे हृदय में बसो, हमारे हृदय को अपना निवास स्थान बनाओ और उसमें ऐसे बेखटके आओ जैसे संसार में मनुष्य अपने घर में बिना स्वर के आ जाता है। हे प्रभो! हे सबको प्रेरणा प्रदान करने वाले परमपिता परमात्मम्! तू सोम है, तू शान्त स्वरूप है, सुख स्वरूप और आनन्द दायक है। जो तुम्हारे निकट आ जाता है, वह न केवल शान्त हो जाता है, बल्कि तृप्त भी हो जाता है। सुखी हो जाता है, आनन्दमय हो जाता है। यह सब तुम्हारे सम्पर्क का ही प्रभाव है। हे प्रभु हमारी आत्मा में रमण कीजिए जिससे हमको यथार्थ ज्ञान, पूर्ण ज्ञान, उपयोगी ज्ञान और आनन्द को प्राप्त करें। हम को दृढ़ निश्चय है कि आप के बिना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आप को छोड़ के दूसरे का ध्यान व याचना जो करते हैं उनके सब काम असफल हो जाते हैं।

---

१ ओं शं नो मित्रः शं वरुणः श नो भवत्यर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥
ऋ० १-९०-९ अथं० १-६-१८/४॥

२ सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः॥ ऋ० १-१-३१/४॥

ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह दुःस्वपन न देखे, क्योंकि उनसे हानि होती है। इसका आशय यह है कि अपने शरीर और मन को ऐसा स्वस्थ, शान्त, निरोग और प्रसन्न बना रखें कि वह स्वपन न देखे।[1] मनुष्य अपनी न्यूनता के कारण ईश्वर से विविध कामनायें चाहता है। किन्तु अपनी सब कामनाओं को पूर्ण होते न देख इष्ट देव में दोष लगाता है। अतः आकुल होकर कभी - कभी उपासक इष्ट देव से प्रार्थना करता है कि हे देव मेरी आवश्यकता आप नहीं समझते, यदि आप मेरी दशा में रहते तब आपको मालूम होता कि दुःख क्या वस्तु है। आपको कदाचित् दुःख का अनुभव नहीं है, अतः आप मेरी दुःखमयी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देते, इत्यादि।[2]

मनुष्य अन्तःकरण से दुर्बल है, वह बारम्बार ईश्वरीय आज्ञाओं को तोड़ता रहता है; उससे बात - बात में अनेक अपराध हो जाते हैं। देखता है कि इन सब के बदले में यदि मुझ को दण्ड मिला तो मैं सदा के लिये कारागार में बन्द रहूँगा। अतः मानव दुर्बलता के कारण ऐसी प्रार्थना होती है[3]।

ऊपर के मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि अपराध होने पर भी आप हम को दण्ड न देवें। इस पर उपासक मन मे कहता है कि हे ईश ! मैं जानबूझ कर अपराध न करूंगा। आपको मैं

---

१ यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं सन्नमयामसि। एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥

ऋ० ८-४७-१७ ॥

२ यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ ऋ० ८-४४-२३ ॥

३ ऋ० ८-४५-३४ ॥ ४ ऋ० ८-४५-३५ ॥

जानता हूं कि आप न्यायाधीश हैं। पापी आपके निकट नहीं रह सकता, अतः आपसे मैं सदा डरता हूं आपके नियम पर चलता हूं तथापि अपराध हो जाये तो कृपा कर क्षमा करें ।1

नोट:—वैदिक मत के अनुसार प्रभुदेव अपनी न्यायकारी व्यवस्था के आधार पर दया तथा न्याय करते हैं।

हे सोम। तू तेज स्वरुप है, तू मुझ में तेज को धारण करा। तेजस्विता उग्रता के बिना जीते मैं प्रलोभनों को नहीं जीत सकता और प्रलोभनो के बिना जीते मैं शारीरिक वीर्य का संरक्षण नहीं कर सकता। तू मुझ में वीर्य धारण करा, मेरे अंग प्रत्यग में नवजीवन प्रदान करा, जिससे मैं बल को धारण कर सकूं। तू बलवान है, संसार के बल, हस्तीबल, विद्युतबल, पृथ्वी आदि को धारण करने सब बल तेरे लिये सेवन से प्राप्त हो सकते है। मैं तो निर्बल, अस्वस्थ तेरे सिवाय और किससे याचना करूं। बलहीन न तो आत्मा को प्राप्त हो सकता है, न आत्मिक ओज को प्राप्त कर सकता है, न ही अपनी रक्षा किसी प्रकार से कर सकता है। अतः मुझे अपना बल, तेज प्रदान कर। जिससे उनको प्राप्त होकर पाप के दमन, अन्याय के विरुद्ध लड़ सकूं। स्वभावतः मन्यु पदीप्त हुआ करेगा, जिससे उदय होने पर सब पाप वासनायें भस्म हो जाती हैं परन्तु साथ ही हे सहः स्वरूप ! तू मुझे सहन शक्ति भी प्रदान कर। जिससे मैं घोर से घोर कठिनाईयों और मुसीबतों को हसते - हंसते इस संसार सागर से पार हो जाऊं ।2

---

1 ऋ० ८-४५-३५ ।।

2 यजुर्वेद १६-६ ।।

हे पापों के निवारक वरुण देव। आप मेरी इस पुकार को सुनो और इस समय मुझ सुखी करो। मैं आप से रक्षा चाहता हुआ पुकार रहा है और विनय कर रहा हूँ। हम भी आपकी प्रार्थना उपासना करते हैं अतः हमें भी अपना यथार्थ ज्ञान देकर सदा सुखी करो।[1]

हे प्रभु आप पवित्र स्वरूप हैं और पवित्र करने वाली सदैव सत्य भाषणमय, मंगलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्तमान निमित्तस्वरूप यह वाणी सर्वशास्त्र बोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामना युक्त सदैव हमें मिलती रहे, जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और महा पाण्डित्ययुक्त हों।[2]

वेद भगवान् ने आदेश दिया कि दुष्ट शत्रुओं पर विजय चाहते हो तो उस परमेश्वर का सहारा लो, और जो सर्वशक्तिमान् है, सर्वसाधन सम्पन्न है, अजेय है, जो सबसे महान् है, और सबका पूज्य है, कृपा करो अपना सहारा दो, हमारी सेनाओं को यत्र तत्र सदैव विजय प्राप्त कराओ, हमारे दुष्ट शत्रुओं का विनाश करते हुये हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और आत्म साम्राज्य धन को सुख से प्राप्त कराइये। ताकि हमारा जीवन सफल हो, आपके परमपुनीत चरण का सहवास प्राप्त कर अमृतानन्द का भोग कर सकें।[3]

महा संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए उस से प्रार्थना करें।[4]

---

१ सामवेद उ० १... -६ ॥ ऋ० १-२५-१६ ॥

२ ऋ० १-१-६-४ ॥

३ ऋ० १-७ १४-४ ॥

४ ऋ० ८-८०-४ ॥

हे जगत् के कर्त्ता परमात्मन् । कृपा करके आप हमारे दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख तथा दुःखों के कारण सब पापों को दूर कीजिये, और जो कल्याणकारक गुण, कर्म, ज्ञान, उपासना आदि उत्तम पदार्थ हैं वह हम सबको प्राप्त कीजिये । जिससे हमारा मनुष्य जीवन सफल हो । हे प्रभु हमारे दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख और दुःखों के कारण, दुष्टता से दूर करो जिससे मैं सबका प्रीतिपात्र बनूं । अज्ञान से, दुर्व्यसन से और स्वार्थ से परद्रोह में लोग फंसते है । हर व्यक्ति को ऐसे आनन्द का उपभोग नहीं करना चाहिये कि जो रोष, अभिमान आदि दुर्गुण उत्पन्न करें । प्रतिदिन हमारे अन्तःकरण में नाना तरह की दुष्ट वासना उत्पन्न होती है । यह ही हमारे महाशत्रु हैं । इनको ज्ञानी, सुशील आत्मा अपने निकट नहीं आने देता । अपने आत्मा में बुरी वासनायें मत उत्पन्न होने दो । सब प्रकार के दुरितों को, दुर्गुण, दुर्व्यसन को दूर कर जिनके परिणाम स्वरूप हमारी दुर्गति तथा अवनति होती है और हम दुख दरिद्रय के गर्त में गिर जाते है और जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव उपयोगी पदार्थ हैं वह हम सबको प्राप्त कीजिए जिससे हमारा मनुष्य जन्म सफल हो ।

हे प्रभु ! तू सविता है, हम सबको न केवल उत्पन्न करने वाला बल्कि निराश्रय छोड़ देने वाला नहीं है । वास्तव में हमारी सब व्यवस्था करने वाला है, जैसे माता - पिता के आश्रित दिव्य संरक्षक, पालन, पोषण करते हैं और सन्तान सब प्रकार से बेफ़िक हो जाती है वैसे आप हमारी हर तरह से देखभाल व चिन्तायें भी रखती है सबकी फिक्र आपको है ।

प्रदत्त दान द्वारा—श्री रामकुमार गुप्ता, १०७ शान्ति नगर, इन्दौर (म०प्र०) ।

वेद ज्ञान द्वारा सन्मार्ग ही दिखाता है और सब व्यवहारों में भीतर ही सत्प्रेरणा प्रदान कर नवीन मार्ग दर्शन भी कराता है। यह नहीं बाह्य रूप से भी सदुपदेश ही देते हो ताकि हम ऐसा जीवन व्यतीत करे कि हमारी दुर्दशा न हो। हे प्रभु आप शुद्ध स्वरूप हो, तू दाता है, सदा देता रहता है, जो भी जगत् में बनाता रहता है, सब हमें ही देता रहता है अपने लिए कुछ भी नहीं रखता है। इसके उपरान्त तू हम से भी अधिक प्रसन्न रहना है। जो हमारे लिये भद्र हो, सुखकारी हो, कल्याण कारक हो, अर्थात् इस लोक में हमारे सुख का समवर्धन करने वाला हो तथा परलोक में हमारा कल्याण करने वाला हो, ऐसे गुण, कर्म, ज्ञान, उपासना आदि उत्तम पदार्थ हमें प्राप्त कराओ।

हे भगवन् ! संसार में शुभाशुभ दो प्रकार के कर्मों से मानव को वास्ता पड़ता हैं। इन कर्मों के करने के लिये वातावरण और अनेक परिस्थिति भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं छोड़ती, अतः हमें अन्दर-बाहर के शत्रुओं से मुकाबला करना पड़ता है। बाहर के शत्रु खतरनाक इतने नहीं, उनसे हम जागरूक सावधान रह सकते हैं और वह परास्त भी हो सकते हैं; परन्तु अन्दर के शत्रु बहुत ही भयानक हैं वह केवल आपके सहायता से विजय करना सम्भव है।

तेरा नाम 'ओम' है, तेरा काम रक्षा करना है। तू रक्षा तब कर सकता है जब सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ हो। यह तीनों गुण तेरे अन्दर पराकाष्ठा से विद्यमान हैं और इन्हीं गुणों से तू अपने भक्तों की रक्षा करता है, तुझे ज्ञान है कि काम क्रोध, लोभ आदि का वास कहा तक है।

तू जानता है कि काम का वास आंख में है, क्रोध का जिह्वा पर अपना दुर्ग समाये हुए है, लोभ का नासिका के अग्रभाग पर, मोह का हृदय गुहा में छुप कर बैठा है । अंहकार ने कान का आश्रय ले रक्खा है। इस अवस्था में देव ! मुझे शक्ति प्रदान कर कि मैं इन पांचों दुर्गों को भस्मसात कर एक तेरा दिव्य ज्योति और भद्रता का आश्रय लूं। जो मेरा सदा कल्याण करेगी। उसके लिये मेरे हृदय मे दया के भाव जागृत कर, बुद्धि में न्याय और कण्ठ में सत्य का डेरा जमा दे, फिर कोई भी शत्रु मेरे पास फटक नहीं सकता। चारों ओर सत्यता और भलाई का ही राज्य होगा और जीवन सफल होगा।

हे देव हमने सुना है कि तेरे द्वार से कभी कोई निराश नहीं होता, कभी कोई उदास लौटा नहीं हां जो यहां आया वह आशाओं से भरपूर हो गया। और उसकी उदासी, प्रसन्नता में बदल गई। अतः हम सब पर कृपा कर एवं हम सब प्रकार से निहाल कर। मेरी इस तुच्छ प्रार्थना को कृपया स्वीकार करे और मेरे बेड़ा पार कर।

नोट : इस मन्त्र में नाना प्रकार की शिक्षाओं का वर्णन है।

यह मंत्र स्वामी दयानन्द जी को बहुत ही प्रिय लगता था। यही कारण है कि उन्होंने इस मन्त्र को यजुर्वेद का भाष्य करते समय हर एक अध्याय के प्रारम्भ में लिखा है। अगर हमें मानव जीवन को सफल बनाना है तो हम अवश्य ही उन बातों पर ध्यान देकर अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

गुण—सत्यभाषण, सत्यवादी, सत्यकर्त्ता, सत्यज्ञानी, प्रभु से विमुख न हो, मन की पवित्रता, पुरुषार्थ, उपासनादि, नित्य करें। आचार, विचार, विहार, व्यवहार।

कर्म—सुकर्मी, यज्ञादि, जप, तप, दानशील, वेद का पठन पाठम, वेद की आज्ञाओं के विरुद्ध न चले, सन्ध्यादि, स्वध्याय शोल, पुरुषार्थ सदैव करना।

स्वभाव—दया, परोपकार, उदारता, सहनशीलता, प्रेम, मित्रता, मिलना-जुलना, धैर्यवान, दीनदुःखी की सहायता, कठिन विपत्ति आने पर भी धर्म का पालन करना।

दुर्गुण—छल, कपट धृष्टता, दम्भ, लड़ना झगड़ना, अहं-कार नास्तिकता, अभिमान, स्वार्थ, क्रोध, राग, द्वेष, लोभ, मोह।

दुर्व्यसन-दुराचार्य में फंसना, पर स्त्री सेवन, एकान्त स्थान में स्त्रियों से वार्ता, मांस भक्षण, शराब, जुआदि मादक द्रव्यों का सेवनादि।

दुःख—आधिभौतिक, आधिदैविक, अध्यात्मिक, अशुद्ध भावना, व्यर्थ कामना, असन्तोष।

पाप—हिंसा किसी उपकारी पशु की, अत्याचार, अप हरण, व्यभिचार।

दुःखों के कारण—वैदिक आज्ञाओं का पालन न करन संसार के भोगों में फसे रहना, प्रभु स्मरण उसके उपकार के प्रति स्मृति न करना, कृतज्ञता प्रकट न करना, हाथ प

हाथ धर कर बैठे रहना, केवल भाग्य के भरोसे पर रहना, अनेक नीच कर्म करते रहना। शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक उन्नति।[1]

हे परमेश्वर ! हमें सद्बुद्धि दो, शुभ वाणी दो कि हम सूर्य - चन्द्रमा के समान नित्य प्रति नियमित रूप से कल्याण पथ का अनुसरण करें। और इसके लिये पुनः दानी, अहिंसक, ज्ञानी महापुरुषों का सत्संग सदा करते रहें।[2] हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाश स्वरूप ईश्वरनाग्ने ! तू बृहस्पति है। मैं तो बहुत से व्रत धारण करता हूँ। पर उन्हें निभा नहीं सकता, पर धीरे धीरे यह व्रत-नियम ढीला होता जाता है और छूट जाता है। आज मैं तुम्हें साक्षी रखकर अन्तःकरण से कहता हूँ कि अब मैं इन सत्य भाषण व्रतों को निभाऊँगा। यदि मैं इस सत्य के महान व्रत का पालन कर सकूँगा, तो अन्य सद्व्रतों का पालन कर सकना मेरे लिये कुछ भी कठिन नहीं होगा। मेरे सत्य भाषण व्रतों के रक्षक और अपने शरण में आये हुए उपासक के मन, विच्छेद तथा आवरणों को भस्म कर उनको कुन्दन बना, अनुपम स्नेह प्रदान करने वाले प्रभुदेव ! मुझे यह जीवन सामर्थ्य, बुद्धि मेधा, प्रज्ञा प्रदान करो, जिससे मैं असत्य को छोड़ने में और सत्य को

---

१ ओम विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव। यजु० ३०-३ ऋग्वेद ५-८५-२

२ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताधन्ता जानता संगमेमहि॥ ऋ० ५-५१-११-१५॥

ग्रहण करने में उद्यत रहूँ। इन मेरी इच्छाओं को आप पूरी करें, जिसमें मैं सभ्य विद्वान सत्याचरणी आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊँ।1

हे श्रोताजन तथा उपदेशकों! तुम मिलकर वैदिक स्तोत्रों से परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना करते हुए यह वर मांगो कि हे जगदीश्वर ! हम वदों के अनुसार अपना आचरण बनावें जिससे हमारा जीवन सफल हो।2

परमात्मा उपदेश करते है कि हे मनुष्यों! तुम प्रातः काल में उठ कर अपने सौभाग्य के लिये प्रार्थना करो कि हे परमात्मन्! इस मनुष्य लोक में आप हमें नाना प्रकार का धन, यश, बल, तेज प्रदान करें, हमें पुत्र पौत्रादि दें और हमको अपनी महत्ता से उच्च कर्मों वाला बनावें।3

परमात्मा उपदेश करते हैं कि हें मनुष्यों ! तुम सब प्रकार से ऐश्वर्य तथा धन की याचना उसी परमात्मा से करो, क्योंकि वहा परमेश्वर्ययुक्त, नाना प्रकार के अन्नरूप धनों का स्वामी और वही सब संसार को यथा भाग देने वाला है, और वही दुष्टों को दण्ड देता और धर्मात्मा शूरवीरों को यथेष्ट धन

---

१ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात सत्यमुपैमि ॥ यजु० १–५ ॥

२ ऋ० ७–७१–६

३ महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यंधि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥

का स्वामी बनाता है, अतः उचित है कि सब प्रजाजन सत्य-परायण होकर परमात्मा से ही धन की प्रार्थना करें।[1]

इस मन्त्र में उपासक अपने पापों के मार्जन के निमित्त परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे महाराज ! वह मैंने कौन बड़े पाप किये हैं जिसके कारण मैं आपको प्राप्त नहीं कर सकता अथवा आपकी प्राप्ति में विघ्नकारी हैं; हे मित्ररूप परमेश्वर ! आप मेरी हनन न करते हुए अपनी कृपा द्वारा उन पापों से मुझे निर्मुक्त करें ताकि मैं शीघ्र ही आपको प्राप्त होऊं।[2]

जीव प्रार्थना करता है कि हे परमात्मन् ! मैं ब्रह्म विद्या के स्तन का पान करूं, जिस अमृत को पीकर पुरुष दिव्य दृष्टि हो जाता है और संसार के सब ऐश्वर्यों के भोगने योग्य बनता है।[3]

हे प्रातः स्मरणीय कर्मयोगी तथा ज्ञान योगिन् ! आप कृपा करके हम को गवादिधन से युक्त करें, हम को भोग योग्य-पदार्थ प्राप्त करायें और हमारे मार्गों को बाधारहित करें अर्थात् दुष्टजन जो हमारे यज्ञादि कर्मों में बाधक हैं उनको शास्त्र बल से वशीभूत करके हम को अभय दान दें, जिससे हम निर्भय होकर वैदिक कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त रहें।[4]

ईश्वर सब पदार्थों का दाता है; अतः अपनी आवश्यक वस्तु उसी से मांगनी चाहिये।[5] परमात्मा से हम मनुष्य उतने ही पदार्थ मांगें जिससे हम अपना निर्वाह अच्छी तरह से कर

(१) ऋ० ७-८४-४ (२) ऋ० ७-८६-४ (३) ऋ० ७-९६-६
(४) ऋग्वेद ८-५-९ (५) ऋग्वेद ८-७८-१

सकें।[1] सृष्टिरचयिता भगवान् ही प्रथम दाता है— वास्तविक स्वामी वही है; अतएव वह ही किसी को कुछ देने का अधिकारी है। उससे ही यश, दिलाने वाला ऐश्वर्य, बल आदि प्राप्त करने की इच्छा करें, वह भी वही जो उसके योग्य हो; प्रभु के गुणों के अनुरूप हो।[2] हे 'रूद्र'दुष्टविनाशकेश्वर! आप हम पर कृपा करो जो हमारे ज्ञानवृद्ध और वयोव्रद्ध पिता उनको आप नष्ट मत करो, तथा छोटे बालक और जवान तथा जो गर्भ में वीर्य का सेवन किया है, उनको मत विनष्ट करो तथा हमारे माता, पिता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये। ऐसे मार्ग से हमको चलाईये जिससे हम आपके दण्डनीय न हो।[3] मनुष्य इस संसार मे वैदिक कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। हे जीव तेरे विषय में ऐसा ही कहा है, हर समय कार्य में जुटे रह। हर समय कुछ न कुछ करते रहना जीवन का सबसे बड़ा गुण है। ऐत्तरेय ब्राह्मण में इन्द्र ने रोहित को कर्मण्यता का ही तो उपदेश दिया था।[4] हे परमगुरु परमात्मन्। आप हम को असत्य मार्ग से पृथक कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये, अविद्या, अन्धकार से छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये और मृत्यु रोग से पृथक करके मोक्ष के आनन्द रूप अमृत को प्राप्त कीजिये।[5]

हे प्रभु! हमें मानव चोला प्रदान करके हमारे ऊपर महान् उपकार किया और इस को धारण करते हुये क्या करना है

---

(१) ऋग्वेद ८-७८-१० (२) ऋग्वेद ८-९०-२

(३) ऋग्वेद १-८-६-२, यजु० १६-१५ (४) यजु० ४०-२

(५) असतो मा सदगमयतमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्यो र्मा मृत गमया। शतपथ ब्राह्मण॥

कैसे करना है, इसका संकेत भी दिया कि 'मनुर्भव"—ऋग्वेद। अर्थात् मानव बनो चोले की सफलता मानव बनने में है। केवल मात्र शरीर धारण लेने से मानव नहीं बन गया। इस मानव बनने के लिये साधन आपने प्रदान किये यह तो हमारे पूर्व कर्मों परिणाम स्वरूप भूल गये और इस भूले लक्ष्य को दीप्तिमान करने के लिये आपने बार बार इसे मार्जन का ही क्रम बताया। हे भगवन्! हम तो अशक्त अज्ञ मानव हैं, तू हमारी वास्तविक परम कल्याणकारणी जननी है। कृपा कर हमे पूर्ण शक्ति प्रदान कर कि उस सूक्ष्म यन्त्र को बुद्धि को स्वपुरुषार्थ से ही शुद्ध एवं उज्ज्वल कर सकूं। विद्वानों का कथन है कि गाने वाले की जो रचना करे उसका नाम गायत्री है। इससे हमारा उत्साह बढ़ा, तथा प्रेरणा मिली अत हम प्रतिज्ञा करते हैं कि उस मन्त्रप्राय आप की स्तुति करते हुये प्रार्थना करते हैं।

हे दयालु परमात्मा! आप अपनी असीम कृपा से हमारी सदा रक्षा करते हैं। आप ही हमारे जीवनाधार है, अपने सेवकों के दुःखों को दूर करके उनको सुख देने वाले हैं। आप सर्वत्र सुप्रतिष्ठित और सुप्रसिद्ध हैं। आप पवित्र और ज्ञान स्वरूप है। आप से ही यह सारा जगत उत्पन्न हुआ है। आप ही सकल शुभ गुणों की खान हैं। आप सर्वाधार, सर्वव्यापी, दुःख विनाशक ज्योति स्वरूप है। आप ही सबकी आत्मा का प्रकाश कराने वाले हो। आपका हम प्रतिदिन ध्यान करें और आप हमें विवेकशीलता, धारणावती, मेधावृद्धि, प्रज्ञाबुद्धि, प्रदान करें। जिसको

प्रदत्त दान द्वारा—श्री रोशनलाल, डी.सी.एम.—रिटेल स्टोर ४-ए, कमला नगर, दिल्ली–७

बुद्धि है उसका बल है। कृपया हमारी बुद्धि और कर्मों को ठीक मार्गों पर चलाइये।[1]

जिस मेधा बुद्धि का विद्वानजन और माननीय रक्षक महात्मा लोग आश्रय लेते हैं, उस मेधा बुद्धि से हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! मुझको आप बुद्धिमान करो। इसी भाव का कवि ने अपने शब्दों में यों वर्णन किया है :—

तू ने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू।
तुझसे ही पाते प्राण हम, दुखियों के कष्ट हरता है तू॥
तेरा महान् तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु में, तू ही रहा है विद्यमान॥
तेरा ही धरते ध्यान, हम मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ कामों में लगा॥

ओं यां मेधा देवगणः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

हे ज्ञान योगी तथा कर्मयोगीन्! आप उत्तमोत्तम नूतन पदार्थ मेरे लिये प्रदान करें। हे सबके शासक प्रभु! आप मुझ को सौ ऊंट दश सहस्र गायों का दान दें जिससे मेरा यज्ञ पूर्ण हो।[2]

हे सर्वरक्षक, सर्वपालक परमात्मन्! चित्त वृत्ति का निरोध तथा अज्ञान नाशक विद्वज्जन आपकी उपासना तथा

---

१ यजु० अ० ३२। मं० १४ यजु० ३२-१५, ३६-३, ऋ० ३-६२-१०, सा० ३०-१३-६-१०

२ ऋग्वेद ८-५-३७॥

स्तुति करने में सदैव तत्पर रहते हैं; जिससे आप उनको उन्नत करते हैं। हे परमेश्वर! मुझ जिज्ञासु की प्रार्थना को स्वीकार करें अर्थात् मुझ को शक्ति दें कि मैं भी आपकी उपासना में सदैव प्रवृत्त रह कर अपना जीवन सफल करूं।[1]

जिज्ञासु जन प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन्! आप हमारे समीप आवें अर्थात् विद्या, शिक्षा तथा अनेक विध उपायों से हमारी रक्षा करें, क्योंकि रक्षा करने वाला कर्मयोगी ही शासक होता है, अरक्षक नहीं।[2]

जो पुरुष दमन करने की शक्ति रखते हैं वही उत्पाती, साहसी, लोगों का दमन करके प्रजा में शान्ति उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए ऐसे तेजस्वी पुरुषों की प्राप्ति के लिये परमात्मा से अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए।[3]

हे बल सम्पन्न सभाध्यक्ष तथा सेनाध्यक्ष! हम लोग युद्ध के प्रारम्भ में स्तोत्रों द्वारा आपके विजय की प्रार्थना करते हैं। आप इस सोमरस को पान करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।[4]

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप पुरातन होने से सबके उपासनीय हैं, कृपा करके हमारी शारीरिक, आत्मिक, तथा सामाजिक उन्नति में सहायक सिद्ध हों, जिससे हम लोग बलवान होकर मनुष्य जन्म के फल चतुष्टय को प्राप्त हों, और एक मात्र आप ही की उपासना तथा आप ही की आज्ञा पालन करते हुए

(१) ऋग्वेद ८-६-१८ (२) ऋग्वेद ८-२-२६
(३) ऋग्वेद ८-७-११ (४) ऋग्वेद ८-९-४

सौभाग्यशाली हों, यह हमारी आपसे विनय पूर्वक प्रार्थना है ।[1]

समुद्र में व्यापारिक जहाजों की रक्षा की बड़ी आवश्यकता होती है अतः वेद भगवान् कहते हैं कि समुद्र की भी रक्षा करना सैनिक धर्म है । तथा कूप में सदा जल विद्यमान रहे और उसमें शत्रुगण विषादि घातक पदार्थ न मिला सकें, अतः कूपों की रक्षा करना विधान है ।[2]

उपासक प्रार्थना में अधिकतर बुद्धि की याचना करता है क्योंकि जब बुद्धि ठीक है तो उत्तम काम कर सकता है । जब बुद्धि का ह्रास हो जाता है तब मानव पागल समझा जाता है । वह केवल अपने ही लिए हानिकारक नहीं है बल्कि दूसरों के लिये भी एक विपत्ति का कारण बन जाता है । अतः बुद्धि के द्वारा ही व्यक्ति जीवन की उपयोगी समस्याओं को हल कर सकता है । और जीवन में सफलता पाता है ।

दीर्घ जीवन, बल आदि की प्रार्थना, ज्ञानार्थ गुरुजनों के प्रति प्रार्थना, पापों से मुक्त होने की प्रार्थना, रक्षा की प्रार्थना आदि - आदि उपासक प्रार्थना करता है ।

हे सर्वशक्तिमान् इन्द्र ! हमें ज्ञान दो, उद्यमी बनाओ, सुकर्मी बनाओ, हमें सद्बुद्धि दो, हमें काम दो । हमें यज्ञमय शुभ कार्य दो, जैसे कि इस संसार में एक पिता अपने पुत्र को ज्ञान देता है । आपकी कृपा के बिना न हम ज्ञानी बन सकते हैं, न ही सुकर्मी, अतएव हम पर आप कृपा करें कि हम आपके पुत्र

---

१ ऋग्वेद ८-११-१० ॥

२ ऋग्वेद ८-२०-२४ ॥

ज्ञानी और सुकर्मी बनें ।1 भगवान् कह रहे हैं। आप यह निश्चित जान लो, कि जो मेरी भक्ति मेरी प्रसन्नता के लिये, यज्ञ, तप, दान, वेदादि सिद्धान्तों का स्वाध्यायादि करता हुआ, मेरे साथ मित्रता करता है, उसका कभी नाश नहीं होता, किन्तु वह उत्तम गति को प्राप्त होता है [2]

प्रभु से प्रार्थना है कि (यजमानस्य) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वालों के पशुओं की हे ईश्वर रक्षा करो ।3

इस मन्त्र में सारे सुखों की प्राप्ति का उपदेश है। वेद-माता जो ज्ञान के देने वाली परमात्मा की पवित्र वाणी वेदवाणी सारे इष्ट फलों को देने वाली है—इसकी जितनी प्रशंसा की जाये थोडी है। सब विद्वानों को योग्य है कि इस ईश्वरीय पवित्र वेदवाणी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि मनुष्य मात्र प्रचार करते हुए सारे संसार में फैला देवें। उस वाणी की कृपा से पुरुष को दीर्घ जीवन, आत्मबल, पुत्रादि सन्तान, गो, घोड़े आदि पशु यश और धन प्राप्त होते हैं। यही वेदवाणी पुरुष को ब्रह्म वर्चस दे कर वेदज्ञानियों के मध्य में सत्कार और प्रतिष्ठा प्राप्त कराती हुई ब्रह्मलोक को अर्थात् 'ब्रह्म लोकः सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जो परमात्मा उसका ज्ञान देकर मोक्ष धाम को प्राप्त करा देती है।"[4]

---

१ ऋग्वेद १०-४६-१० (२) ऋ. १०-४८-५ (३) यजु० १-१

४ स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पापमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविण ब्रह्म वर्चसाम्।
मह्य दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ अर्थ० १९-७१-१ ॥

इस मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना की गई है कि हे सर्वशक्तिमान् परमात्मा आप कृपा करें कि मैं दीर्घकाल तक जीता हुआ आप के ज्ञान और सच्ची भक्ति को प्राप्त होकर, अपने मनुष्य जीवन को सफल करूं ।[1]

हम लोग अपनी रक्षा के लिए उस ईश्वर की जो जंगम स्थावर सब का स्वामी है, वही बुद्धि का प्रेरक है, उसकी प्रार्थना करते हैं।

हे अखिल ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर आप से भिन्न, तथा आप से बड़ा तथा आपके तुल्य, द्युलोक और पृथ्वी पर न हुआ है और न होगा। हम लोग लौकिक पदार्थ अश्व, हाथी, अन्नादि तथा सवारियों की इच्छा करते हुए तथा अन्न, बल आदि से युक्त होकर हम आपकी प्रार्थना एवं उपासना करते हैं।

हे देव विद्वानों ! हम पर ऐसी कृपा करो कि हम अपने कानों से सदा कल्याणकारक वेद मन्त्र और उनके व्याख्यान रूप सदुपदेशों को ही सुनें, आंखों से कल्याणकारक उत्तम उत्तम दृश्यों को ही देखने का प्रयास करें, हम अपनी वाणी से आपके ओंकारादि पवित्र नामों को और सबके उपकारक प्रिय व सत्य वचनों को कहे, मन वचन, कर्म में किसी की हिंसा न हो, ऐसे ही हमारे प्रत्येक अंग उपाँग से आपकी सेवा समाज व राष्ट्र के लिए ही हो। कभी किसी प्रकार से भी शरीर के किसी हिस्से मे भी किसी की भी हानि न करें। हम पूर्ण आयु को

---

१ दृते दृꣳह मा ज्योक्ते संदृशि । जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि ॥ जीव्यासम् ॥ यजु० ३६-१९ ॥

प्राप्त हों, वह आयु, आपकी सेवा वा विद्वान्, धर्मात्मा, महात्मा, सज्जनों की सेवा के लिये ही हो।[1]

हे जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्त्ता परमात्मन्! आपका यश समस्त संसार में व्याप रहा है, आप ही अपने सच्चे उपासक को शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाले हैं। भगवन् जैसे खरबूजा पक कर अपनी लता से स्वयं ही बन्धन से छूट जाता है इसी प्रकार मैं भी मृत्यु के बन्धन से सर्वथा छूट जाऊ, मुक्ति से कभी पृथक् न होऊं, आपकी कृपा से मुक्ति सुख को अनुभव करता हुआ सदा आनन्द में मग्न रहूं।[2]

हे प्रभु! हमें पुरुषार्थी बनाओ, हम जिससे अन्न, रस आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त होकर सुखी हों। हम दूसरों के भरोसे रहते हुए, आलसी, व हाथ पर हाथ रख न बैठे रहें, आपने हमें ज्ञान व कर्म इन्द्रादि, उद्यमी बनने के लिये दी है, न कि आलसी, प्रमादी बनने के लिए। आप उनको केवल सहायता प्रदान करते हो जो कि अपना स्वयं पुरुषार्थ करके सहायता की याचना करता है। और आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ धर्म पूर्वक कार्य करता है।[3]

हे जगत्पिता अनेक उत्तम पदार्थों के प्रदाता परमेश्वर! अपनी अपार कृपा से, हमें वेदों के स्वाध्यायशील, शरीर की पुष्टि करने वाले अनेक खाद्य पदार्थों के स्वामी, निरोग ऐश्वर्य

---

१ यजु० २५-२१ साम, उ-२२-९-२॥

२ ऋग्वेद ७-५९-१३॥

३ भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो।
यदिन्द्र मृडयासि नः॥ सामवेद पू० २-३-८-१॥

शरीर वाले और कल्याणकारी शुद्ध मन से युक्त बनावें। हे सकल के स्वामी इन्द्र ! हम कभी दरिद्री, दीन, मलीन, पराधीन, रोगी, दुःखी न हों, किन्तु सदैव सुखी रहते हुए उत्तम पदार्थों के स्वामी हों।[1]

सबसे बढ़कर यशस्वी, सर्वज्ञ, सबका पालक इन्द्र, भक्तों के दुःखों को काटने वाला, जानने योग्य, सूर्यादि सब बड़े बड़े पदार्थों का जनक और हम सबके कल्याण के लिये वेदों का उत्पादक परमात्मा हम सबका कल्याण करें।[2]

मनुष्य मात्र को चाहिये कि अपने किसी बन्धु वर्ग व मित्र के आने जाने से परमात्मा से प्रार्थना करें और अपने लिए भी उस परमात्मा से हर एक चेष्टा में प्रार्थना करो, जिससे अपने मित्रों के और अपने काम निर्विघ्नता से सम्पूर्ण हों।[3] यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र १-६ तक मन के सम्बन्ध से बड़ा ही उत्तम लिखा है। मन जो दूर दूर ले जाने वाला विषय प्रकाशन इन्द्रियों का एक प्रकाशक है। वह मेरा मन धार्मिक विचार वाला हो, शुभ विचार वाला हो, शुभ संकल्प वाला हो, भलाई के ही विचार करने वाला हो, तथा मंगलमय मंगल विचार युक्त

---

१ सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं ँ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥
यजु० २-२४॥

२ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
साम० उ० ९-३-९॥

३ अथर्ववेद ११-४-६॥

हो। प्रभु देव यह मन आपके वश में है। कृपया इसको भी मेरे में स्थित कीजियेगा। जिससे मैं सदा धार्मिक कार्य करता रहूँ। धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति में मन की इच्छा ही कारण है। मन को सत्संग, स्वाध्याय, और प्रभु भक्ति में लगाने से धर्म में त्याग और अधर्म के ग्रहण में इच्छा ही न होगी।[1]

हे ब्रह्माण्डपते! हम सब को तीन वस्तुओं की कामना करनी चाहिये—एक आप परब्रह्म की प्राप्ति, दूसरी वेद विद्या, तीसरी यज्ञ, अर्थात् १—हम यजमानों को मन से ईश्वर का चिन्तन, २—वाणी से वेद मन्त्रों का उच्चारण, ३—कर्म से अग्नि में आहुति छोड़ना।[2]

प्रभु से प्रार्थना है कि, दयामय परमात्मन्! हमारे देश-वासियों में इन तीन देवियों की भक्ति हो। १—इडा अपनी मातृ-भाषा भाषियों के साथ मातृभाषा में बातचीत करना। २—लोक, परलोक, जड़, चेतन, पुण्य, पाप, हित, अहित, कर्तव्य, अकर्तव्य को बताने वाली सच्ची विद्या सरस्वती। ३—मही अपनी जन्म भूमि के वासी अपने भाईयों से प्रेम। यह तीन देवियां मनुष्य को सदा सुख देने वाली हैं, कभी हानि करने वाली नहीं हैं। प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में इन तीनों देवियों के प्रति भक्ति होनी चाहिए। जिस देश में इन तीन देवियों में भक्ति नहीं है, जिनका अपनी भाषा और विद्या से प्रेम नहीं, अपनी मातृ भूमि में बसने

---

१ यजु० ३४—मन्त्र १-६ ॥

२ प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥
सामवेद पू० १-२-६-२

प्रेम नहीं, वह देश अवनति के गड्ढे में पड़ा रहेगा ।[1]

सब का भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान् ।
सब पर कृपा करो भगवान्, सब का सर्वविध हो कल्याण ।।

हे ईश ! सब सुखी हों कोई न हो दुखारी ।
हों सब नीरोग मघवन् धन धान्य के भण्डारी ।
सब भद्र भाव देखें सन्मार्ग के पथी हों ।
दुखिया न कोई होवे सृष्टि के जीवधारी ।

सब ही सुख हों । सब ही नीरोग हों । सब कल्याण और भद्र देखें । मत कोई दुःख को प्राप्त हो ।[2]

शिक्षा समाप्ति के लिए यह आवश्यक है कि गुरु और शिष्य में मेल और सहानुभूति रहे । इसी उद्देश्य से यह प्रार्थना की गई है ।

हे ईश्वर (गुरु और शिष्य) हम दोनों की साथ साथ रक्षा करें । हम दोनों के साथ साथ पालें और भोगने का अवसर दें । हम दोनों को साथ साथ बल देवें । हम दोनों का पढ़ना पढ़ाना तेजयुक्त हो । हम दोनों आपस में तीनों प्रकार के दुःख हमारे लिये शान्त रहें । अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकार के सन्तापों से हमें दूर रक्खें ।[3]

---

१ इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ।। ऋग्वेद १-१३-९

२ ओ३म् सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ।।

३ ओ३म् सह नाववतु सहनौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।।

प्रार्थना में पुकार

विपत्ति के अनपेक्षित आक्रमण से बचने का आधार हमारा सच्चा, अभिन्न हितैषी- एकमात्र सहारा ईश्वर ही हो सकता है। हम यथाशक्ति अपना प्रयत्न करें, स्वयं भरपूर कोशिश कर विपत्तियों का मुकाबला करें, हानियों को लाभ में बदलने के लिये अपनी ओर से कुछ भी कसर उठा न रखें, दुर्भाग्य की मार के आगे आत्मसमर्पण न करें। कुशल खिलाड़ी की तरह हारे हुए खेल को जीतने की कोशिश जारी रखें। पर उसके बाद किस पर निर्भर हों ? उसके बाद सब कुछ ईश्वर पर छोड़ दें। जो स्वयं अपना प्रयत्न नहीं छोड़ता उसको ईश्वर गुप्त सहायता करता है। जिन्हें ईश्वर पर विश्वास है. जो संकट के समय उसे पुकारते हैं, उन्हें अवश्य ही आत्मा से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है । मन के भीतर और बाहर ईश्वर के अस्तित्व का विश्वास रखिए। परमात्मा की दिव्य शक्ति आपको मिलेगी और आपके सब कष्ट दूर होंगे। एक बार ईश्वर पर भरोसा तो कीजिए। मजबूत और अटूट। द्वार-द्वार ठोकर न खाकर एक भगवान् का ही आश्रय लीजिए और उसी को पुकार करे अपने मन की बात सुनाईये। अपने आत्मा का बन्धन के लिये जैसी प्रार्थना करते और मनादि का रहस्य खोजते हैं वैसे ही प्रयत्न पुरुषार्थ की करें। एक भगवान् ही ऐसे हैं, जो पीड़ितों दुखियों, अभावग्रस्तों और जिनको कोई भी नहीं जानता, मानता, कोई भी अपने पास बिठा कर दुःख की कहानी सुनना नहीं चाहता, उनकी सारी दुख गाथा सहानुभूति से सुनते हैं. उन्हें अपनाते हैं, उनकी सहायता इच्छा खुले दिल से भगवान् के सामने रख दीजिये। और उनसे कहिये कि जिस तरह से जिसमें

आपका कल्याण समझते हों वही करें। ऐसा न चाह कर यदि आप अपने मन की बात चाहते हैं, तो भी अन्धविश्वास पूर्वक केवल उन्हीं को पुकारिये। वे या तो आपकी मन की बात कर देंगे या आपके मन से उस बात को ही निकाल देंगे। दोनों ही स्थितियों में आपको अपना तो लेंगे ही। इस का फल होगा अचल सुख-शान्ति की प्राप्ति।

पिता का मान न करें पिता की सम्पत्ति और नाम को न बढ़ावें, पिता का का काम न करें, उसकी आज्ञाओं का पालन न करे, ऐसा पुत्र जो उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनना चाहे उसे कौन सुपुत्र कहे ? माता बच्चे की पुकार सुनती है जो उसका आज्ञाकारी पुत्र है। परम पिता परमात्मा वह सर्वत्र है, वह व्यापक है, आप्त है, वैश्वानर है, विश्वसनीय है। अपने पुत्र की पुकार को सुनता है जो उसके नियमों के अनुसार कर्तव्य का पालन करते हैं।

उदाहरण—जब द्रोपदी ने सब और से निराश होकर भगवान् को पुकारा तब उन्हें तुरन्त सहायता का प्रबन्ध करना पड़ा। विलक्षण वस्त्र धारण करना पड़ा। भगवान् अपने प्रेमी भक्त के लिए इतने उदार हैं तो फिर जो उनसे कभी कुछ नहीं चाहते, ऐसे निष्क्रम भक्त को वे प्रत्यक्ष मिल जायें तो फिर उसमें सन्देह किस बात का है।

मेरा लड़का श्री सुधाकर सन् १९६३ में जब वह सीपिंग कारपोरेशन ऑफ इण्डिया में इंजीनियर की हैसियत से जहाज में काम कर रहा था तो उस साल उसको बहुत तेज बुखार हो गया था। उसको बुखार के दरम्यान खून की उल्टी हो गई।

फौरन कम्पनी ने उसके फेफड़ों का ऐक्सरे करवाया पता लगा कि उसके फेफड़े खराब हो गये हैं। कम्पनी ने सुधाकर को कलकत्ते के एक अच्छे नर्सिंग होम में तीन मास तक रख कर उसका पूरा-पूरा इलाज किया उसकी सेवा के लिये मुझको वहां जाना पड़ा और मैं हर रोज इसको देखने के लिये नर्सिंग होम में जाता रहा। लड़के ने कई बार कहा कि पिता जी दिल्ली चले जाओ क्योंकि यहां ठहरने में काफी तकलीफ होती है। हस्पताल में इलाज ठीक चल रहा है। यही नहीं सब तरह का प्रबन्ध ठीक है। मैं एक दिन उदास था। उस दिन मैं साय काल घूमने के लिये बलगचिया के बाग की तरफ चल पड़ा। जब मैं बाग में जा रहा था, तब रात्रि का समय था। मेरे पीछे एक बालक और एक स्त्री आ रहे थे मुझे पता नहीं कि मैं अपनी ठोकर से या उन दोनों की ठोकरों के कारण मैं एक झील में जा गिरा। पानी मेरी छाती तक आ गया। पटरी के किनारे का फासला लगभग ४०-५० कदम होगा। वहां जाकर मेरा पैर जम गया, चश्मा पानी में गिर पड़ा और मैं पानी को देख कर घबरा गया। बिल्कुल अन्धेरा था मेरे लिये पानी से निकलना असम्भव था। मैंने प्रभु देव से प्रार्थना की हे देव। उधर तो लड़का हस्तपताल में बीमार है, जिनके यहां मैं ठहरा हुआ हूं उनको भी कितनी परेशानी होगी। मेरे बचने की अब कोई सम्भावना नहीं थी जैसे मैंने प्रभु देव से प्रार्थना की तो एक दम मेरे चारो ओर बुद्धि में बहुत तेज रोशनी हो गई तथा सहसा उसी समय विद्युत प्रकाश हुआ। इस रोशनी को पाकर मैंने पानी से निकलने का प्रयास किया और पटरी के किनारे तक आ गया। कोई आदमी मेरे पास न था और न कोई राहगीर मिला, जो मुझको पकड़ कर ऊपर ले आये। अन्त में भगवान् पर भरोसा किया और

पटरी के किनारे को पकड़ कर धीरे-धीरे मैं ऊपर आ गया वैसे ही रोशनी खत्म हो गई। भगवान् अवश्यमेव मदद करते हैं। हमारा उन पर पूरा-पूरा विश्वास तथा श्रद्धा होनी चाहिये। ओर जो प्रेरणा प्रभु देवें उस पर हम चल पड़ें तभी कल्याण होता है।

प्राणरक्षा—भगवत् कृपा से प्राण रक्षा की एक घटना कुछ वर्ष पहले की है, जब एक व्यक्ति झालरापाटन (राजस्थान) में राज मन्दिरों के जागीरदार गांवों का प्रबन्धक था ओर कृषि की सारी व्यवस्था करने के लिये उसे प्रायः इधर-उधर जाना पड़ता था। एक बार जब वर्षा होने के बाद आकाश स्वच्छ हो गया था, तब वह झालरापाटन से घोड़े पर सवार होकर एक सिपाही को साथ ले गांव की ओर चला। मन में भगवत् स्मरण चल रहा था। मार्ग में घोड़ा कीचड़ से अपने पांवों का बचाता हुआ चल रहा था। वह उसे शाबासी के शब्द सुनाता जा रहा था। उनके सुनने से मानो उसे साहस मिल रहा था। पशु भी स्नेह - व्यवहार को समझ लेते हैं, यह वात उस दिन सोचने को मिली।

आगे बढने पर अंधकार भी बढ़ गया। घोड़ा सीधे सच्चे मार्ग पर बराबर चल रहा था, परन्तु अन्धेरे में उस व्यक्ति को ऐसा भ्रम हुआ कि जैसे वह घोडा मार्ग को छोड़कर चल रहा हो। मन में यह विचार आते ही उसने लगाम को झटका देकर दूसरी ओर मोड़ना चाहा, किन्तु वह मुड़ने से इन्कार करने (रुकने) लगा, उसे यह अटपटा लगा, कि इतना सीधा समझ-दार होने पर भी आज यह कहना क्यों नहीं मानता है ? थोड़ी मार और ऐंड लगने पर विवश होकर बेचारा घोड़ा मुड़ा,

किन्तु आगे चल कर फिर रुक गया। उसको इस अड़ियलपने पर अधिक क्रोध आया। उसने उसे जोर से ऐड़ लगाई और मारा भी। किन्तु वह एक इंच भी आगे न बढ़ा, पुनः पीछे हट गया। उसे आश्चर्य हुआ। इतने में ही आकाश में एकाएक बिजली चमकी। उसके क्षणिक किन्तु तीव्र प्रकाश में देखा कि एक कुएं के थाले पर घोड़े का अगला पांव रुका हुआ है और घोड़ा घबरा रहा है। यदि वह आधा इंच भी और आगे पांव बढ़ाता अथवा आगे बढ़ने के लिये उसको वह विवश करता तो निश्चित रूप से उसके साथ मालिक भी गहरे कुएं में जा पड़ता। कुएं में गिरने पर उन दोनों का जिस कष्ट से प्राणांत होता उसकी कल्पना मात्र से आज भी रोमांच हो आता है। यह अद्भुत् दृश्य और स्थिति देखकर वह सर्वरक्षक भगवान् की असीम कृपा पर गद्गद् हो, उनके दीन रक्षक विरदपर कृतज्ञ भाव से आंसू बहाने लगा। वह तुरन्त घोड़े से उतरा, उसकी पीठ थपथपाई और फिर उसे पकड़ कर पैदल चल कर सही रास्ते पर आया। यह सत्य है कि प्रभु अनेक रूपों में प्रकट होकर सर्वथा रक्षा करते हैं। (कल्याण)

अबोध रक्षक

जब कभी कोई ऐसी विचित्र घटना घटती है जो देखने-सुनने मे सामान्य सी होते हुए भी विचार करने पर अपने आप में अद्भुत् और कल्पनातीत होती है तो उसके मूल में सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर की कृपा (प्रेरणा) शक्ति मानने के सिवा अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता।

अभी कुछ दिनों पहले दिनांक १५-९-८० को हिसार (हरियाना) में घटित यह घटना भी आश्चर्य में डाल देने वाली

है। घटना इस प्रकार है कि हिसार के एक स्थानीय व्यक्ति श्री सत्यदेव जी की १८ वर्षीया पुत्री सरला उस दिन बिजली की प्रैस मशीन से कपड़ों पर लोहा (इस्त्री) कर रही थी। एकाएक उसे बिजली का करेण्ट लग गया जिससे वह चीख उठी। पास में खड़ी उसकी छोटी तीन वर्षीया बहिन उसकी चीख सुन कर अनिष्ट की आशङ्का से घबरा गयी। किन्तु वह तत्काल यह न जानते हुए भी कि वह क्या करने जा रही है, उस बालिका ने पास में रखी हुई एक छोटी लाठी उठायी और बिजली के उस तार पर दे मारी जो गैडगिट की प्रैस–मशीन के सार्किट से जोड़ता था। फलस्वरूप प्रैस–मशीन का सम्बन्ध करेण्ट लाईन से कट गया। ऐसा होने से उसकी बड़ी बहिन की जान बच गयी। बालिका की इस मतिता तथा सामयिक क्रियात्मकता से एक सयानी बालिका की प्राण-रक्षा हो गयी।

उस अल्पवयस्का बालिका को यह सब करने की प्रेरणा किसने दी। यह प्रश्न किसी को भी सोचने के लिये विवश कर देता है। पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर यह निश्चित और सुस्पष्ट हो जाता है कि प्रेरक शक्ति के रूप में, सब के अन्त:करण में निवास करने वाले उस परमात्मा के सिवा और कौन हो सकता है? वस्तुत. संकट के क्षणों मे वह सर्व सुहृद ही तो सबका रक्षक, सहायक और एक मात्र सबल शरण्य है।

(कपूरचन्द डी.पी., कल्याण नवम्बर १९८०)

प्रदत्त दान द्वारा—मैसर्स रघवर दयाल पन्नालाल, पेपर मर्चेन्ट
चावड़ी बाजार, देहली ६

प्रार्थना से अन्तःकरण की शुद्धि

परमात्मा उपदेश करते हैं कि दानी तथा यज्ञशील यजमानों के मार्ग सदा निर्विघ्न होते हैं, और उनके पापों का सदैव क्षय होता है। अर्थात् जब वह अपने शुद्ध हृदय द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन् ! आप हमारे पापों का क्षय करें तब उनके उस कर्म का फल अवश्य शुभ होता है। यद्यपि वैदिक मत में केवल प्रार्थना का फल मनोवांछित पदार्थों की प्राप्ति नहीं हो सकती तथापि प्रार्थना द्वारा अपने हृदय की न्यूनताओं को अनुभव करने से उद्योग का भाव उत्पन्न होता है जिसका फल परमात्मा अवश्य देते हैं, या यों कहो कि अपनी न्यूनताओं को पूर्ण करते हुए जो प्रार्थना की जाती है वह सफल हो जाती है।[1]

प्रार्थना से अहंकार की शुद्धि होती है अर्थात् धन, जन, विद्या, बुद्धि, बल राज्य का तो अभिमान होता है। वह अशुद्ध अहंकार है। वह पतन का कारण है। यही मनुष्य को परमेश्वर से दूर रखता है। शुद्ध अहंकार की निशानी नम्रता है। जो कुछ मानव के पास है वह सब धनादि परमात्मा का है मानव तो केवल त्याग भाव से उपयोग का अधिकारी है। अथवा प्रभु द्वारा प्रदत्त इस संसार के पदार्थों का त्याग पूर्वक उपभोग करो ? क्योंकि यह धन तो प्रजापति का है। अतःत्यागपूर्वक भोगो। जब मानव यह समझ कर चलता है तब आत्मा निराभिमानी हो जाती है, उससे आत्मा में सब वस्तुओं से वैराग व उपेक्षा वृत्ति

---

१ सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ऋ० ७.६६.५ ॥

उत्पन्न होने लगती है। प्रार्थना के द्वारा बल उस व्यक्ति को मिलता है जो अपने पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् प्रभु से शुभ याचना करता हुआ अपने दोषों की निवृत्ति का दृढ़ संकल्प करता है। उसके लिए प्रभु से साहस, सहयोग, और सामर्थ्य माँगता है।

हे प्रभो ! मैं अपनी चिन्तन रूपी नौका में डुबकी लगा-कर अपने सब पाप मैलों को धो डालूं और भूतकाल में किये हुए कर्मों का आत्मनिरीक्षण तथा मैं अपने भविष्य के लिये बुरी आदतों को छोड़ने का पूरा - पूरा दृढ़ निश्चय करूं। अर्थात् जागृत अवस्था मे स्थूल पापों से सदा बचता रहूँगा तथा दूसरे सूक्ष्म लोक की सहायता से दृढ़ता प्राप्त करूंगा।

उपसंहार

प्रार्थना से बल मिलता है अर्थात् एक शक्ति का मानव के अन्दर सचार होता है। जिसके परिणाम स्वरूप पापकर्मों के फल को सहन करने में शक्ति मिल जाती है। प्रार्थना का सम्बन्ध केवल आत्मा का परमात्मा के साथ है। सांसारिक दृष्टि से प्रार्थना संसार में कई प्रकार से देखी जाती है परन्तु यहां अन्तः-की शुद्धि का दूसरा उपाय प्रार्थना को कहा गया है। यह मन, बचन, एवं आत्मा बुद्धि से संयुक्त होने के लिये मुख्य साधन है। इसका सभी अपने जीवन मे यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कर सद्-भावना के साथ विश्वहित की कामना करते हुए प्रार्थना नित्य नियम से करनी चाहिए।

इति प्रार्थना प्रकरण

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

॥ ओ३म् ॥

उपासना

अन्तःकरण की शुद्धि का उपाय उपासना

अन्तःकरण की शुद्धि का तीसरा उपाय उपासना है। मौन तथा जप उपासना के अङ्ग हैं।

उपासना शब्द का अर्थ

उपासना शब्द का अर्थ प्रभु के समीपस्थ होना है, उसके निकट होना है। प्रभु की आज्ञा का पालन करना, उसकी सेवादि करना ही उपासना है। भगवान् की उपासना करते समय उसके गुणों को अपने अन्दर धारण करने का यत्न किया जाना चाहिए उसके गुणों को अपनी आत्मा में धारण करना चाहिये। जैसे आम का पेड़ है। जब तक उसके फल को हम चख नहीं लेते तब तक उसके फलों का स्वाद कैसे ज्ञात होगा? केवल देखने से तो स्वाद नहीं जाना जा सकता। इसी प्रकार जब भक्त भगवान् की भक्ति करता है, उसको उस समय जो स्वाद आता है वही सच्चा स्वाद है। उसकी उपमा किसी सांसारिक पदार्थ से नहीं दी जा सकती है। वह तो अलौकिक अमृत है। चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त करना ही सच्ची उपासना है। उपासना से जो भक्ति का रस उत्पन्न होता हैं, ज्ञान के द्वारा अन्य चीजों की भी प्राप्ति होती है।

वैदिक संध्या में उपासना के चार मन्त्र दिये है। जिनको सब आर्य लोग जानते है। प्रभु की समीपता के लिए चित्त की वृत्तियों को, सब बुराईयों से हटा कर परमात्म-परायण करना

ही ध्यान है। हे मानव! कहीं यह न समझ लेना कि जब ईश्वर सर्वव्यापक है, तो फिर परमात्मा के समीप बैठने का क्या अभिप्राय है। वह समीप भी है, जो हमसे पृथक् भी नही हो सकता और दिखाई भी नहीं देता। ईश्वर के वेद रूपी ज्ञान को देखो। जो कभी न मरता है और न जीर्ण होता है। वह सदा समरूप रहता है। ईश्वर पूर्ण स्वरूप है। उसकी सृष्टि भी पूर्ण है। उसकी सृष्टि में अमंगल कारी काम नहीं हो सकता है। ऐसी धारणा करो कि परमेश्वर के निकट मैं हूँ और प्रभु देव मेरे निकट है। ऐसी बुद्धि करके उपासना के मन्त्रों में परमेश्वर की स्तुति की जाती है। उपस्थान में देवताओं की स्तुति और नमस्कार किया जाता है। इष्ट देव के समीप होकर प्रार्थना करना ही उपस्थान कहा जाता है।

उपासना का समय

दो काल में ही परमात्मा का ध्यान करें अर्थात् प्रातः काल और सायं:काल। हे सर्वद्रष्टा ईश्वर! सूर्य के उदित होने पर मैं तेरी प्रार्थना करता हूँ और दिन के मध्य काल में तेरी स्तुति करता हूँ। हे इन्द्र यद्यपि तू पदार्थों के साथ विद्यमान ही है तथापि तुझे हर प्राणी नहीं देखते हैं। इस कारण प्रसन्न होकर हमारे निकट आ और आकर हम पर अनुग्रह कर।[1]

उपासना की रीति

जब जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहे, तब तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन

---

१ हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि॥ ऋ० ८.१३.१३।

को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें, तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, न्यायकारी लक्षण वाले परमात्मा को और अच्छी प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन कर उससे अपनी आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति प्रार्थना, उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भी भली भांति से उसमें लगा दे। उसकी रीति पतञ्जलि मुनि के किये योग शास्त्र और उन्हीं सूत्रों के वेदव्यास मुनि क किये भाष्य के प्रमाणों से देखें। अर्थात् अष्टांग योग में बतलाई गई विधि को अपनाते हुए परमात्मा के समीपस्थ होने और उनको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष करने के लिये जो काम करना होता है, वह वह सब करना चाहिए। अर्थात् अष्टांग योग के आठ अंकों का अनुकरण करें।

वैदिक ईश्वर उपासना का प्रारम्भ नमन से होता है। यह गुण क्रियात्मक रूप में स्वभाव आ जाये, यह प्रथम चिन्ह है। उपास्य देव की आज्ञाओं का पालन करना, यह दूसरा चिन्ह है। समर्पण से अपना और अपना आपा और अपना सर्वस्व अर्पण कर देना यह अन्तिम चिन्ह है।

हमारा भजन, जप, तप, आदि क्यों स्वीकार नहीं होता ासका कारण वह है कि हम द्वेषयुक्त वाणी से बोलते हैं। द्वेष-क्त वाणी वह है जो स्वार्थ और अहंकार से बोली जाती है। ।:स्वार्थ और निरहंकार वाणी आत्मा की होती है। प्रभु देव आशीर्वाद से प्राप्त यह अन्तिम चिन्ह सफलता का है। ाशीर्वाद तब मिलता है जब कर्म प्रभु के समर्पण किया जावे, ो यज्ञ, हवन में अन्त में कह देते है "इदमग्नये इन्दन मम"।

उपासना के प्रकार

उपासना दो प्रकार की होती है। सगुण और निर्गुण जगदुत्पादक प्रभु ने हमारे लिए उत्तम जगत उत्पन्न किया है।[1]

इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है। यह वर्णन दो प्रकार का है। ईश्वर क्या है और ईश्वर क्या नहीं है ?

ईश्वर क्या है— वह सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् हैं, शुद्ध है, कवि है, मनीषी है परिभूः सर्वोपरि विराजमान् हैं। इन गुणों की विद्यमानता के कारण वह प्रभु सगुण है।

ईश्वर क्या नहीं है। ईश्वर अकाय है, नस नाडी के बन्धन से रहित है। पाप से रहित है। अजन्मा है। आदि-आदि उक्त गुण परमात्मा में नहीं है। अतः यह निर्गुण है।[2]

परमात्मा की उपासना में आवश्यकता मात्र इतनी ही सर्वप्रथम मान लेने की है कि परमात्मा है और सर्वोपरि है। अर्थात् उससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है। जैसा कि अर्जुन ने भगवान कृष्ण के प्रति गीता में कहा है। हे अनुपम प्रभाव वाले ! तीनों लोकों में आपके समान भी दूसरा नहीं है। तब

---

१ श्रेष्ठ सर्वं सविता साविषन्नः ॥ ऋ० १/१६४/२६ ॥

२ स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषीः परीभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-श्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु०४०/८ ॥

फिर अधिक तो कैसे हो सकता है ?

यह भगवान क्या वस्तु है ? तर्क की दृष्टि से भगवान् क्या है ? भगवान् तर्क का विषय नहीं हैं । उन्हें तो श्रद्धा से ही ग्रहण करना है । परन्तु तर्क से भी उनका ज्ञान प्राप्त होता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता हम पग पग पर अनुभव करते हैं । जो पिण्ड में है, वहीं ब्रह्माण्ड में है और जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्मण्ड" मुझे आंख मिली है तो दुनिया में सूर्य होना ही चाहिए। मुझे आंख की अनुभूति है तो सूर्य होना ही चाहिये। मुझ में प्राण है तो दुनिया में वायु होनी ही चाहिये । विश्व रूप दुनिया में वायु है तो पिण्ड रूप शरीर में प्राण है । मैं नहीं हूँ इसका अनुभव किसी को नहीं हुआ । मुझको मेरी अहं का अधिष्ठान रूप आत्म तत्त्व है । वह प्रति विश्वरूप है, तो विश्वरूप सृष्टि में परमात्म तत्त्व होना ही चाहिए । इस प्रकार आत्म तत्व सिद्ध है तो परमात्म तत्व सिद्ध होना ही चाहिये ।

आत्म तत्व अनुभव से मिला, और परमात्म तत्व अनुमान से मिला । मुझ में मेरे अहं का अधिष्ठान रूप आत्म तत्व है तो विश्व का अधिष्ठान शक्ति ईश्वर है ।

उपासना किसकी करनी चाहिए ?

जिसमें नित्य सर्व ज्ञान है, वही ईश्वर है । जिसके ज्ञानादिगुण अन्नत हैं, जो ज्ञानादि गुणों की पराकाष्ठा है । जिसके सामर्थ्य की अवधि नहीं और जीव के सामर्थ्य की अवधि प्रत्यक्ष देखने में आती है । इसीलिए सब जीवों को उचित है कि अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये परमेश्वर की उपासना सदा करते रहें । वह प्रभु कवि ही नहीं मनीषी भी है । वह मन की वृत्तियों को

जानने वाला है। वह सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ है। योग दर्शन १।२५ में कहा है—

तत्र निरतिशयम् सर्वज्ञबीजम्।

ईश्वर ज्ञान की अवधि है, उसका ज्ञान सबसे बढ़कर है, उसके ज्ञान से बढ़कर किसी का ज्ञान नहीं है।

हे चेतन स्वरूप प्रभो! आप परमैश्वर्य वाले चेतन मात्र प्रभु की ही हम उपासना करते हैं। आप से भिन्न किसी जड़ वा चेतन मनुष्य वा किसी प्राणी को अपना इष्टदेव और पूजनीय नहीं मानते. क्योंकि आप ही सब देवों के देव चेतना स्वरूप अधिपति हैं। आपकी ही उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं, आपको छोड़ इधर-उधर भटकने से तो, हमारा दुर्लभ यह मनुष्य देह व्यर्थ चला जाएगा, इसलिये हम सब, आपको ही अपना पूज्य और उपासनीय इष्ट-देव जान आपकी उपासना और आपकी वेदोक्त आज्ञा पालने में मन को लगा कर मनुष्य देह को सफल करते हैं।[1]

उस परमेश्वर के आश्रय ही सब वस्तुमात्र ठहरी हुई हैं। उस परमात्मा के आश्रय ही जल, समुद्र, चन्द्र और वायु ठहरा हुआ है; अर्थात् भूत भौतिक सारा संसार उस परमात्मा के आश्रय ही ठहरा हुआ है।[2]

---

१ इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः॥ उ० ८ १-२-१॥

२ उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्। आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः॥ ११-७-२॥

वह प्रभु तो हम मनुष्यों की आत्मा की भी आत्मा है। क्योंकि परमेश्वर सब जगत के भीतर और बाहर तथा मध्य एक तिल मात्र भी उसके बिना खाली नहीं है। उससे अधिक निकटतम वस्तु तो हमसे और कोई है ही नहीं। सचमुच वह परमात्मा हमारी आत्मा में भी व्यापक है। हे संसार के लोगों तुम उस ईश्वर को नहीं जानते जिसने सारे ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया है। वह प्रकृति जीव से भिन्न है तथा तुम्हारे हृदय में विद्यमान है। तुम उसे नहीं जानते क्योंकि तुम अविद्यारूपी अन्धकार से घिरे हुये हो। व्यर्थ के वाद विवाद में उलझे रहते हो, केवल प्राण पोषण में ही रत रहते हो, और ज्ञान की चर्चा मात्र में लगे रहते हो, योगाभ्यास के द्वारा ज्ञान को आचरण में लाने से ही सुख और मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं।[1]

वह ईश्वर दूसरा, तीसरा, चौथा, पाञ्चवा ,छटा, सातवा आठवां, नवां दसवां नहीं कहा जा सकता। वह एक ही है, एक ही सर्वत्र व्यापक है। वह निश्चित रूप से एक ही है। उस एक की ही उपासना करनी चाहिये। उसकी उपासना से ही मुक्ति धाम प्राप्त हो सकता है।[2]

हे ऐश्वर्यशाली परमात्मा! कोई भी तुझ से अधिक उत्कृष्ट नहीं है। हे शत्रु विनाशक ! कोई तुझ से बढ़कर भी नहीं है, कोई

---

१ न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥
। यजु० १७-३१ ।

२ न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
नाऽटमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। अ० १३-४-१६-१८-२०

तेरे समान भी नहीं है।[1]

हे मनुष्यों। जैसे हम लोग सब के अधिपति, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी परमेश्वर को उपासना करते हैं वैसे तुम भी उपासना करो। वेद में शब्द को ब्रह्म कहा गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि वेद का प्रत्येक शब्द हमें परमात्मा के ज्ञान की दिशा की ओर बढ़ाता है। अतः वेद के ब्रह्ममय शब्द का चिन्तन, मनन शील मनुष्यों को जीवन पर्यन्त करते ही रहना चाहिये। मानव जो ज्ञान और मोह को लेकर ही उत्पन्न हुआ था, वह अन्त तक मनुष्यों के साथ ही रहेगा। ज्ञान प्रकाश की बुद्धिमता है और मोह अज्ञान अन्धकार की मूढ़ता। देवी सम्पत्ति के गुण और आसुरी सम्पत्ति के दोषों को लेकर ही आदि मानव का प्रादुर्भाव हुआ था।

विद्वान् लोग एक ही सत्य स्वरूप परमात्मा को चन्द्र, मित्र, वरुण, यम, मातरिश्वा, सुपर्ण आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। परमात्मा अनन्त है उसकी शक्ति अनन्त है वेदों में देवोपासना अनन्त शक्ति वाले परमात्मा की ही उपासना है। वेद प्रबल इन सारे देवों को एक और अकेले परमात्मा शक्ति में केन्द्रित करते हुये कहता है कि ज्ञानवान व्यक्ति एक ही सत्य को विभिन्न नामों से कहते हैं।[2]

---

१ न कि इन्द्र त्वयुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् । सामवेद मंत्र २०३।

२ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।
ऋ० १-१६४-४६

आज का वैज्ञानिक अध्ययन इस मत को निरन्तर अग्रसर करता रहता है। मनुष्य के ज्ञान का विकास उसी प्रकार धीरे धीरे हुआ जिस प्रकार हमारे घरों में हमारे बच्चों को ज्ञान धीरे धीरे विकसित होता है। पर हमारे इस युग का वैज्ञानिक अध्ययन जैसे प्रगति करता जायेगा, वैसे-जैसे वह उस वैदिक सिद्धान्त के निकट पहुँचता जायेगा। जिसमें कहा गया है कि वह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण प्रकट होता है। तथा पूर्ण से पूर्ण को निकाल दिया जाने पर पूर्ण ही शेष रह जाता है।[1]

उदाहरण---अन्न के खाद्यान्न का जन्म अन्न के साथ ही हुआ है, गेहूँ से ही जो खाद्यान्न आज विद्यमान है उसके जन्म के आदि काल में भो था और भविष्य में भो जब तक एक गेहूँ का अस्तित्व है वह विद्यमान रहेगा।

सिंह ने धीरे-धीरे हिंसा नहीं सीखी। वह जितना हिंसक आज है उतना ही हिंसक अपनी सृष्टि के आदि में भी था और अन्त तक वह उसी भांति हिंसक बना रहेगा।

गाय धीरे धीरे शाकाहारिणी नहीं बनी, वह आज की भांति अपनी सृष्टि के आदि काल से ही शाकाहारिणी थी। और अन्त तक वह शाकाहारिणी बनी रहेगी।

कोई भी देव उपासना के योग्य नहीं है, केवल एक ब्रह्म ही है। दूसरे देव तो केवल व्यवहार सिद्धि के योग्य है, क्योंकि वह सब में व्यापक और सबका कारण है।

---

१ ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमदुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूणमेवावशिष्ते ॥

बृहदारणयोपनिष्दः ८-१-१

स्वार्थी लोगों ने ही अनेक देवताओं की उपासना को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये कहा है। यह सब देव जड़ हैं। जड़ की उपासना से बुद्धि भी जड़ादि होगी। केवल ब्रह्म चेतन, आनन्द स्वरूप है, वही अजर, अमर और सबको पूजनीय है। अत: उस प्रभु की श्रद्धा विश्वास प्रेम से उपासना करे।

ब्राह्मण ग्रन्थों से आरम्भ करके, पुराणों, वेदों में सब महात्माओं ने, ऋषियों ने, सबने ओम की ही उपासना की है। मनु जी ने ओ३म् को वेदों को सार बताया है और इसको वे एकाक्षर ब्रह्म कहते हैं।

विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि पर ब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के बिना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। उस परमात्मा को जानकर ही जीव मृत्यु को पार कर सकता है अन्यथा नहीं। क्योंकि बिना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान की मुक्ति का कार्य कोई नहीं हैं। ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है। सब मनुष्य को इसमें ही वर्तना चाहिए और सब प्रकार के पाखण्ड तथा जंजाल छोड़ देना चाहिए।[1]

ईश्वर से बढ़कर कोई जीव नहीं, अतः वही उपास्य देव है।[2]

जिस कारण वह द्रष्टा, सर्वश्रोता है अत: उसको कोई भी परास्त नहीं करता। हे मनुष्यो! उसकी ही उपासना करो।[3]

---

१ यजु० ३१।१८। २ ऋग्वेद ८/७८/४। ३ ऋग्वेद ८/७८/५

ईश्वर परम पवित्र है अतः उसकी उपासना भी पवित्र बनकर करो ।[1]

वह परमात्मा महान् देव हैं—सबका अधिपति है, कर्ता, धर्ता, संहर्ता वही है । उसको जैसे विद्वान् पूजते गाते और उसकी आज्ञा पर चलते हैं वैसा ही सब करें ।[2]

हे मनुष्यों ! जिसकी उपासना सब कोई आदि काल से करते आए हैं आज भी उसकी उपासना करो,वह चिरन्तन ईश्वर है ।[3]

जिस कारण वह सबका पालक, शासक और अनुग्राहक हैं और सर्व शक्तिमान है अतः जगत् के कल्याण के लिये उसकी मैं उपासना करता हूं ।[4]

उसका महान् यश है । जिसको सब ही गा रहे हैं । हम भी सदा उसकी उपासना करें ।[5]

परमात्मा अनन्त है तथापि जीवों पर दया करने वाला भी है । अतः वह उपास्य है ।[6]

ईश्वर के उपासक को किसी वस्तु का अभाव नहीं रहता[7] सच्चा परमेश्वर भक्त पापी नहीं होता ।[8]

जिस कारण परमात्मा में किंचित् मात्र भी पक्षपात का लेश नहीं है और सबका स्वामी भी वही है अतः उसको सब पूजते चले आते हैं । इस समय भी तुम उसकी कीर्ति गावो ।[9]

---

१ ऋग्वेद ८ । २ ऋ० ८।४४।२६ । ३ ऋ० ८।४६।१२
४ ऋ० ८-६८-४ । ५ ऋ० ८-६८-५ । ६ ऋ० ८-६८-६
७ ऋग्वेद ८।३२।४ । ८ ऋ० ८।३१।१२ । ९ ऋ० ८-४३-२१

परमात्मा ने यह सब लोक बनाये हैं और वही इनका आधार है। उसकी पूजा करो।[1]

हे मनुष्यों उसकी विभूति देखो सूर्यादि का भी वह बल प्रद है। वही सबका हितकारी है उसकी उपासना करो।[2]

उसकी कृपा से अन्न की भी प्राप्ति होती है, वायु, जल और सूर्य का प्रकाश में तीनों प्राणियों के अस्तित्व के परम साधन हैं जिनके बिना क्षण मात्र भी प्राणी नहीं रह सकता; इनको उसने बहुत सी राशि में बना रखा है। तथापि इनको छोड़ विविध गेहूँ, जो आदि अन्नों की आवश्यकता है इन अन्नों को परमात्मा दे रहा है। अतः वही देव उपास्य पूज्य है।[3]

हे विभो! हम से दूरवर्ती और समीपवर्ती सब प्राणी मात्र की पुकार को, आप सदा सुनते हैं, इसलिये हम सबको योग्य है कि आपके रचे वेदों के पवित्र स्तुतिरूप सूक्त और मंत्रों का वाणी से पाठ, यज्ञ होमादिकों के आरम्भ में अवश्य किया करें और मन से आपका ही ध्यान और उपासना सदा किया करें।[4]

---

१ अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अभिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राडिवश्वेतानि वरुणस्य व्रतानि।
ऋग्वेद ८|४२|१

२ अग्नि विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम्।
सप्ति न वाजयामसि ८|४३|२५

३ तुभ्यं घेते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक्।
धासिं हिन्वन्त्यत्तवे। ऋग्वेद ८|४३|२६

४ सामवेद उ० ६-२-१-१

दिव्य शक्ति वाले,सर्वत्र व्यापक,सर्वज्ञ,सर्वान्तर्यामी,परमात्मा अपने सम्मुख, पीछे से, दूर और समान से देख रहे हैं। उसने सूर्य लोक, अन्तरिक्ष लोक, और भूमि तथा सब पदार्थ मात्र को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। ऐसे दिव्य शक्ति वाले, सर्वज्ञ, सर्व व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा को सदा समीप दृष्टा जानते हुये, सब पापों से बचकर सदा उसकी उपासना करनी चाहिए।[1]

हे प्यारे मित्रों! आओ, हम सब मिलकर उस सर्व शक्तिमान सब के नियन्ता एक प्रभु की शीघ्र स्तुति करें,हमारा शरीर क्षण भंगुर है, ऐसा न हो कि हमारे मन की बात मन में रह जाये,इसलिये प्राकृत पदार्थों में अत्यन्त आसक्ति न रखते हुये, उस स्तुति योग्य सबके स्वामी जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना-उपासना में अपने मन को लगा कर शान्ति को प्राप्त होवें।[2]

हे मित्रो! आप एक दूसरे के सहायक बनो और आपस में विरोध न करते हुए मिल कर बैठो। उस जगत्पिता की अनेक प्रकार की स्तुति प्रार्थना, उपासना करो। उस प्रभु के अत्यन्त कल्याणकारक गुणों का गान करो, ऐसे उसके गुणों का गान करते हुए, सब सुखों को और मोक्ष को प्राप्त होवोगे, उसकी भक्ति के बिना मोक्ष आदि सुख प्राप्त नहीं हो सकते।[3]

हम सबको योग्य है कि होम, यज्ञ, दान, ध्यान, स्तुति, प्रार्थना आदि जो-जो अच्छे कर्म करें, श्रद्धा भक्ति प्रेम और नम्रता से करें, क्योंकि श्रद्धा और नम्रता के बिना किये गये कर्म, हस्ती के स्नान के तुल्य नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अश्रद्धा

---

१ अथर्व० ४/२०/१ ॥ २ साम० पू० ४-२-५-७ ॥
३ सामवेद पू० २/२/७/१० ॥

अभिमान, नास्तिकता आदि दुर्गुणों को समीप न फटकने दो। वे पुरुष धन्य हैं जो यज्ञ, दान, तप, परोपकार, होम, स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि उत्तम कार्यों को श्रद्धा, नम्रता और प्रेम से करते हैं। हे प्रभो! हमें भी श्रद्धा नम्रता आदि गुणयुक्त और दान यज्ञादि उत्तम काम करने वाला बनाओ।[1]

आप प्रभु सब के रक्षक और पालक हैं आपकी भक्ति बड़ी सुगमता से हो सकती है, वेदों में आपकी भक्ति, उपासना करने के लिए बहुत ही उपदेश किए गए गये हैं। जो भाग्यशाली आप की भक्ति प्रेम पूर्वक करते हैं, उनकी सब कामनाओं को आप पूर्ण करते हैं।[2]

वेद में शब्द को ब्रह्म कहा गया है जिसका तात्पर्य यह है कि वेद का प्रत्येक शब्द हमें परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान की दिशा कि ओर बढ़ता है अतः वेद के ब्रह्ममय शब्दों का चिन्तन और मननशील मनुष्यों को आजीवन करते ही रहना चाहिये।

मानव जो अज्ञान और मोह को लेकर ही उत्पन्न हुआ था वह अन्त तक मनुष्यों के साथ ही रहेगा। ज्ञान प्रकाश की बुद्धिमता है और मोह अज्ञाननाशक अंधकार की मूढ़ता। दैवी सम्पत्ति के गुण और आसुरी सम्पत्ति के दोषों को लेकर ही आदि मानव का प्रादुर्भाव हुआ था।

परमात्मा के सत्य चिन्तन के माध्यम से मनुष्य असत्य से सत्य की ओर बढ़े, यही वैदिक ज्ञान योग है। मनुष्य अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़े यही वैदिक कर्मयोग है एवं मनुष्य मृत्यु से जीवन की ओर बढ़े यही वैदिक भक्ति योग है।

---

१ सामवेद पू २-१-२-५। २ सामवेद पू० ४-१-५-२॥

परमात्मा अनन्त है, उसकी शक्तियां अनन्त हैं। वेदों की देवोपासना अनन्त शक्ति वाले परमात्मा की ही उपासना है। वेद प्रबल इन सारे देवों को एक और अकेली परमात्मा शक्ति में केन्द्रित रखते हुये कहता है कि ज्ञानवान व्यक्ति एक ही सत्य को विभिन्न नामों से कहते हैं।[1]

हे महाबलिन् बलप्रदाता! हम आपके भक्त आपकी ही उपासना करते हैं, आप कृपा कर हमें आत्मिक बल दो, जिससे हम लोग, काम क्रोध आदि दुःखदायक शत्रुओं को जीतकर, आप की शरण में आवें। आपकी शरण में आकर ही हम सुखी हो सकते हैं, आपकी शरण में आये बिना तो, न कभी कोई सुखी हुआ और न होगा।[2]

जैसे पिता अपने पुत्रों के लिये उत्तम वस्तुओं का संग्रह करते हैं मन से चाहता है, कि मेरे पुत्र योग्य बन जायें और सुखी करूं। ऐसे ही आप चाहते हैं कि आपके पुत्र, धर्मात्मा होकर आपका पूजन करे, तब मैं अपने प्यारे इन पुत्रों को अपना यथार्थ ज्ञान देकर, मोक्ष आदि अनन्त सुख का भागी बनाऊं।[3]

वेदों में, उपनिषदों में, हवनमन्त्रों में (स्तुति, प्रार्थना, वासना) एवं आर्याभिविनय के अनेकों मन्त्रों में भक्ति विशेष पर बहुत बल दिया है। आजकल बहुत से लोग समझते है कि उपा-

---

१ ऋग्वेद २/२३/१।

२ त्वा शुग्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुपब्रुवे सहस्कृत।

१ स नो रास्व सुवीर्यम्॥ सामवेद उ० ८/६/१३॥

३ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः॥ सामवेद उ० १/१/१

सना में इतना ही आवश्यक है कि किसी विषय पर ध्यान जमाया जाय। उपनिषद् में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उपासना विषय केवल परमात्मा का हैं।

उस जगत् कर्ता परिपूर्ण जगत्पति परमात्मा चे तनदेव की उपासना करनी चाहिये। किसी जड़ पदार्थ को परमेश्वर मानना और उस जड़ पदार्थ को ही भोग लगाना, उसी को प्रणाम करना, पंखा व चामर फेरना महामूर्खता है। परमेश्वर ने ही सब जगत के पदार्थो को बनाया, ईश्वर रचित उन पदार्थों में ईश्वरबुद्धि करके, उनको भोग लगाना नमस्कार आदि करना, महामूर्खता नहीं तो और क्या है ?1

जो आप से भिन्न पदार्थ की पूजा व उपासना करते है, उनको उत्तम फल कभी प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि आपकी ऐसी कोई आज्ञा नहीं है, कि आपके समान और कोई दूसरा पदार्थ पूजन किया जावे, इसलिये हम सबको आप की ही पूजा करनी चाहिये।2

हम किस देवता की श्रद्धा, भक्ति से उपासना करें। वह प्रजापति कैसा है। प्रभु की अनेक प्रकार की योग्यताओं का वर्णन है जिसका केवल मात्र प्रजापति परमेश्वर से ही सीधा सम्बन्ध है। जो शरीर में आत्मा को प्रवेश कराने वाला है। आत्मा को शरीर को दान देने वाला है। जो हम भोजन, फल, रस, इत्यादि, अन्नादि पदार्थ खाते हैं, उससे रस मांस हड्डी, मज्जा, अपने आप चुपके चुपके यह कार्य होता है और हमें पता भी नही होता है। जिस प्रकार से सर्वसंचार हो गया। उसी से हमें शारीरिक, सामाजिक, आत्मिक उन्नति की प्राप्ति होती है।

---

१ यजु० ३१-१ २ सामवेद उ० १०-१२-२३।१

स्तुति करते समय आत्मा को देखो। यह आत्मा अनेक प्रकार से प्रकट होती है। 'ओम्.' नाम से उसे आत्मा का ध्यान करें। बलहीन परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता। बलहीन अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता है फिर दूसरों की रक्षा का तो सवाल ही नहीं उठता।[1]

आत्मा का स्वरूप

स्वामी दयानन्द जी शरीर से भिन्न आत्मा को शाश्वत् नित्य रूप में स्वीकार करते हैं न तो वे भौतिक वादियों की तरह आत्म तत्व को जड तत्व से निमित्त मानते हैं और ना ही जीवात्मा को मायोपहित चैतन्य रूप से मान्यता प्रदान करते हैं। जीवात्मा के स्वरूप का उल्लेख उन्होंने उपनिषदों के मंत्र तथा वेदों के मंत्र और अन्य दर्शनों के अनुसार ही किया है। वह आत्मा भौतिक तत्वों से निर्मित नहीं है अपितु अनादि है, कठोपनिषद में कहा है कि वह आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है और ना ही किसी वस्तु का परिवर्तन रूप है। तथा उससे परिणाम होकर अन्य वस्तु भी नहीं बन सकती है। यह अजन्मा और नित्य है। सदा रहने वाला और पुराना है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता है जो कुछ अपनी लम्बी यात्रा में इसने कमाया है वह भी नष्ट नहीं होता।

इसी प्रकार गीता में आत्मा को नित्य, अनादि, शाश्वत, पुरातन माना गया है। यह आत्मा होकर न रहता हो ऐसी

---

१ ऋग्वेद १०-१२-३ यजु० २३-३ ऋ० १० २१-५ यजु० ३२-६ ऋ० १०-१२१-२ यजु० १३-४ ऋ० १०-१२१-२ यजु० २५-२३

बात भी नहीं है, क्योंकि यह आत्मा जो अजन्मा है जिस पदार्थ का कभी निर्माण नहीं होता वह विनष्ट भी कभी नहीं होता । आत्मा चेतन स्वरूप है और यह नित्य तथा एक स्वरूप रहता है । यह आत्मा अमर है और अच्छेद्य है ।[1]

आत्मा को शस्त्र आदि नहीं काट सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल इसे गला नहीं सकता और वायु इसे शुष्क नहीं कर सकता है । जैसे मानव पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र पहन लेता है तथा पुराने शरीर को छोड़ देता है और नवीन शरीर को प्राप्त करता है । आत्मा मिश्रित पदार्थ नहीं है जिसका विच्छेद नहीं होता है । यह विज्ञानमय है चेतनता उसका तत्व है ।[2]

आत्मा का निश्चित स्थान है । मन हृत्प्रतिष्ठ है, हृदयाकाश में स्थित है हृदय में नहीं, हृदयाकाश में । मन के भीतर चित्त स्थित है और चित्त के भीतर आत्मा का निवास है । जीवात्मा का हृदयाकाश में निवास है । जब प्राण शरीर से निकलने लगता है तब वह भी निकल जाता है जिसका निकलना ही मृत्यु का कारण है तथा प्राण ही सारे शरीर का

---

१ कृत प्रणाश अकृत कर्म भोग । स्यादवाद मंजरी ।
न जायते म्रियते वा विपश्चित् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
कण्ठ २-१८

२ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ गीता २-२३

राजा है और प्राण ही सारे शरीर को संभाले हुए है। यह आत्मा सत्य से, तप से, यथार्थ ज्ञान से और नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया जाता है।

जिसके शासन को समस्त देवता स्वीकार करते हैं। विशाल ब्रह्माण्ड में सब लोक-लोकांतर एक दूसरे के साथ सम्बद्ध होकर शासन सूत्र में बंधे हुये है। हर एक अपनी मर्यादा की परिधि में रहकर कार्य कर रहे हैं। पृथ्वी को सूर्य से ९ करोड़ मील की दूरी पर रख कर और भी अधिक कौशल का परिचय दिया गया है। यदि यह दूरी या कुछ समीप हो हो जाये तो पृथ्वी पर अत्यन्त ताप बढ़ने से कितनी गरमी के कारण जीवन नष्ट और कहीं अधिक वर्षा होगी, इसके परिणाम दिन रात और ऋतुओं में, भयंकर परिवर्तन होकर पृथ्वी का सौन्दर्य नष्ट हो जावेगा। इसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी से अधिक दूर चला जाये तब समुद्र से वाष्प ही उठकर रह जाये परन्तु मेघ निर्माण कार्य सर्वथा लुप्त होने से वृष्टि का अभाव हो जावे और वृष्टि के अभाव से अन्नादि, फल, फूल, बनस्पति, खाद्य पदार्थों का ही लोप हो जावे। इसी प्रकार बुध, शुक्र, मंगल, शनि, बृहस्पति आदि ग्रह यह सभी एक दूसरे से नियमित दूरी पर स्थित हैं। यह सब परमेश्वर की सुन्दर शासन व्यवस्था का प्रमाण है। (ऋ० १०-१२१-५। यजु० ३२-६)

जीवन अर्थात् शरीर धारण करना जिसकी छाया के समान है और मृत्यु भी छाया के समान है। छाया के लिये तीन पदार्थों की जरूरत होती है एक तो प्रकाश करने वाला सूर्य के समान प्रकाशक हो दूसरा कोई ऐसा पदार्थ हो जिस पर

प्रकाश की किरणों के पड़ने से वह प्रकाशित हो और तीसरा वह स्थान जहां पर वृक्ष आदि के कारण प्रकाश न पड़े। यह नियम जीवन और मृत्यु पर भी लागू होता है। छाया और प्रकाश दोनों अवस्थायें प्रकाश के कारण होती हैं। यदि वृक्ष आदि पर सूर्य की किरणें पड़ती है तो वृक्षादि की प्रतीति होती है। और यदि सर्वथा अंधकार हो तो उसकी प्रतीति नहीं होती। इसी प्रकार यदि सूर्य की किरण वृक्ष आदि पर पड़े तो उसकी छाया की प्रतीति होती है। यदि प्रकाश न हो अथवा सर्वथा अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ हो तो छाया की प्रतीति नहीं होगी। यह बात इसलिये कही गई हैं कि प्रकाश और छाया इन दोनों का सम्बन्ध सूर्य के साथ है जिस प्रकार प्रकाश और छाया की सत्ता सूर्य के अधीन हैं उसी प्रकार जीवन मृत्यु का कारण परमेश्वर है।

(यजु० २५-१३, ऋ० १०-१२१-२)

परमेश्वर ने सुख की रचना की। सुख नहीं तो कुछ नहीं यह सुख ही है जिसको प्राप्त करने के लिये प्राणी मात्र अनेक प्रकार के उद्योग और प्रयत्न करते है। सचमुच इस सुख के कारण ही संसार में महान् आकर्षण और अद्भुत सौन्दर्य दिखाई दे रहा है। सुख नहीं तो कुछ न होता।

संसार में जितने प्रकार के सुख हैं वे सब परिणाम स्वरूप दुःख हैं, वे सब परिणाम स्वरूप अनित्य हैं। सदा रहने वाले नहीं हैं। प्राणि मात्र की जीवन और मरण की समस्या एक बिकट समस्या है। इस समस्या का समाधान प्रजापति परमेश्वर के साथ है। प्राणी मरना नहीं चाहता, यही चाहता है कि वह सदा सुखी रहे और कभी भी मरे नहीं, दुःख और मृत्यु से

सदा दूर रहना चाहता है। सदा सुखी और जीवन की उत्तम अभिलाषा सदा कामना रखता है।

तब यह दुःख और मृत्यु कहाँ से आ गये ? विचार करने से प्रतीत होता है कि प्राणि मात्र की सत्ता से ऊपर कोई बड़ी बलवती सत्ता है। जो प्राणियों के कर्मों को सदा निरीक्षण किया करता है और उनके कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल प्रदान करता है। जिसके फलस्वरूप सुख दुःख तथा जीवन मरण की विरुद्ध परिस्थितियां दृष्टिगोचर होती हैं। अगर यह परमेश्वर की प्रभावशालिनी महती सत्ता न हो, जीवन मरण की विकट समस्या का सन्तोषप्रद समाधान नहीं मिल सकता। अतः मन्त्र कहता है कि जीवन मरण परमेश्वर के प्रबल नियमों के आधीन है। यजु० ३२-६ ऋ० १०-२१-५ ॥

हनन—मानव आत्मा का हनन न करें। आज का मानव आत्मा का वध अनेकों तरीकों से करता है। जैसे—जो अपने शरीर को ही आत्मा समझकर दूसरों के भोगों को छीन कर अपने पालन पोषण में रत रहते हैं। जो अपने सुख के लिए दूसरों को दुःख देते है। जो इस जगत् को झूठा मानते हैं, और अपने को ब्रह्म कहते हैं। जो अपने आत्मा के विरुद्ध चलते हैं अपनी आवाज को दबा देते हैं। कोई विष खाकर, कोई फांसी लगाकर, कोई ऊपर की मंजिल से कूदकर कोई कपड़ों में आग लगाकर आदि आदि करके आत्मा का हनन करते हैं।

इसका परिणाम क्या होता है—ऐसे लोग मरने के पश्चात् आसुरी योनियों में जाते हैं अर्थात् कीट, पतंग, पशु, पक्षी और वृक्ष आदि की योनियों में जाते हैं। कामी पुरुष अपने

काम भोगों के लिये कुत्ते या बंदर का ओर लोभी पुरुष को सुअर का जन्म मिलता है। यजु० ४०-३ ॥

परमात्मा आत्मा को नहीं देता वह तो उसे ज्ञान का बोध कराने वाला है।

उदाहरण—श्री कबीर साहब ने एक माता को चक्की चलाते देखकर अपने मन मे कहा कि इसी प्रकार मुझे भी पिस कर मर जाना है। यह सोचते सोचते वे खड़े हो गये। माता से पूछा कि क्या सब के सब दाने पिस जाते हैं। कहा नहीं नहीं। उस माता ने चक्की के पाट उठाकर दिखाये, ये तो चक्की के चारों ओर आगे पिछे दाने पड़े हैं। ठीक इसी प्रकार हमारी आत्मा को जागरूक करना है।

काम करते करते एक दफ्तर का बाबू अपनी पेन्सिल को कान पर रख लेता है। तभी उसको अफसर बुला लेता है। जब वह वापिस आता है। तब इधर उधर पेन्सिल को देखता है। न मिलने पर चपरासी से पूछता है कौन आया था। चपरासी कहता है कोई नहीं। चपरासी उस बाबू की पेन्सिल को कानपर देखकर ज्ञान करा देता है। यही अवस्था आत्मा की है। वही जीव को ज्ञान करा देती है। यजु० २५-१३ ऋ० १०-१२१-२ ॥

आत्म कल्याण—आत्म कल्याण का साधन अपनी आत्मा ही है गीता में कितना सुन्दर कहा है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आमैत्वह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ गीता ६-५

प्रदत्त दान द्वारा—मैसर्स हजारीलाल शान्तिलाल, पेपर मर्चेन्ट,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

मनुष्य को चाहिये कि अपनी आत्मा के द्वारा ही अपनी आत्मा का उद्धार करें अपनी आत्मा को अधोगति न पहुँचावें। यहां आत्मा स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

अपनी आत्मा को इतना उन्नत करो—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है॥

आत्मविश्वासी और धीर पुरुष खुशामदी करके चारों ओर बेईमानी करके दूसरों के आगे गिड़गिड़ा कर अपनी आत्मा का हनन नहीं करता वह तो भर्तृहरि के इस कथन को सम्मुख रखता है—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्ठम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ नीति० ८४

नीतिनिपुण लोग चाहे निन्दा करे अथवा प्रशंसा करे, लक्ष्मी आये अथवा चली जाये। आज ही मृत्यु हो जाये अथवा युगों के पश्चात् हो, धीर पुरुष किसी भी अवस्था में न्याय के पथ का परित्याग नहीं करते।

आत्मा का बल—आत्मा का बल घृणा से घटता है। दीन दुःखियों की निष्काम भाव सेवा से बल बढ़ेगा। पवित्रता आत्मा का चिन्ह है। आत्मा साधना का भोजन है, धर्म का पालन करना, कर्तव्य दृष्टि से पालन करना, दृढ़ संकल्प व साहस।

हे मानव, अगर आत्मा को भोजन नहीं दे सकता, उसका हनन मत कर, तथा शरीर से पृथक मत कर, वध मत कर।

उपासना कौन करता है

जो आत्म कल्याण चाहे, प्रभु दर्शन का अभिलाषी होवें, उसे पहले अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी होना जरूरी है। ऐसे मनुष्य पर प्रभु की कृपा होती है। जैसे स्वामी दयानन्द जी पर प्रभु ने कृपा की और उसका उन्होंने अनुकरण किया और उनको सफलता मिली।

ईश्वर की कृपा का अनुभव एक ऐसा अमृत है, जिसकी उपमा किसी सांसारिक रस से नहीं हो सकती। वह अनुभूति अलौकिक है। प्रभु की महिमा का दर्शन ही तो वास्तविक दर्शन है। जब एक बार यह नस नाड़ी में बह निकलता है कोई कार्य करता है, वह न रुकने वाला, उसका रस स्त्रोत बहता ही जाता है। एक मस्ती हमेशा साधक के सिर पर सवार रहती है। हाथ काम करते जाते हैं। हृदय जप करता जाता है बिना प्रयत्न के अपने आप प्रभु का चिन्तन होता जाता है। मैं खाता हूं इसलिये कि प्रभु के काम के लिये, यह शरीर बना रहे। ऐसा सोना, खाना पीना प्रभु की पूजा नहीं तो क्या? मेरी सारी क्रिया कलाप प्रभु के चरणों में अर्पित है।

प्रभु वाणी बिना बल के नहीं बोली जाती है, धनी लोगों के शब्द उनके धन के बल पर निकलते है। उनकी वाणी प्रत्यक्ष प्रकट करती है कि वह अधिकारी और शासक है। वकील र

प्रदत्त दान द्वारा—श्री जगदीश प्रसाद, ई ७८, फैज–२, अशोक विहार, दिल्ली।

बैरिस्टर जो बोलता है वह अपनी बुद्धि के बल पर बोलता है। उसकी वाणी उसकी बुद्धि भी ऐसा प्रकट करती है जो अपनी छाप लगा देती है। विद्वान की वाणी विद्या के बल पर बोली जाती है। साधारण आदमी जब बोलता है, वह अपने प्राण के बल पर बोलता है। हे प्रभो ! मैं किस बल पर बोलूं, मेरे पास न धन का बल है, न शासक का बल. न बुद्धि। हे प्रभु मैं तेरे ही आश्रित हूँ। हे देव ! तू बल दे, क्या बल दे अपना बल दे। तेरा बल क्या है, तू सर्वशक्तिमान् है, तेरी वाणी सत्य शुद्ध है। वह सब, फरेब से रहित है, और वह अहंकार तथा स्वार्थ से रहित है। यदि तेरा बल नहीं है तो कटु, कठोर, अप्रिय बोल नहीं है।

दो चीजें प्रसिद्ध हैं एक वाणी दूसरा तेरा बनाया जगत् साधारण जगत् प्रत्यण जो कि देव संसार के पदार्थों का एक नमूना है। मेरे केश, शिर, आँख, कान ये सब समस्त जगत् के देवता के प्रतिनिधि हैं। मेरा शरीर का कोई तेरे नाम को प्रकट नहीं कर सकता। जो तेरे अमृत रस का पान करा सके। यह वाणी ही है जो ऐसा रस पान करा सकती है। लाखों योनियों में किसी को ऐसा पूरा अधिकार नहीं दिया। एक मानव देह वाले को एक यह प्रिय वस्तु दान दी है जो इसका पान करा सकता है। मैं सदा प्रार्थना करता रहता हूँ। बारम्बार तेरे पवित्र चरणों में इस वाणी को मौन करते हुए एकान्त स्थान में करता हूँ कि उस वाणी को मैं मन, वचन, कर्म एक जैसी हो। हे देव ! तू निर्विकार है। मेरी वाणी को भी निर्विकार कर, दयालु ! मुझे सहारा दे, कि मेरा व्रत परिपूर्ण, परिपक कर, मेरी सब पाप वासनायें शान्त कर दें।

ईश्वर एक विचित्र बैंक है। उससे मनुष्यमात्र को शक्ति

मिली है जब तक अपनी शक्ति को उचित और सम्पूर्ण उपयोग का हिसाब नहीं पेश करते, नई शक्ति नहीं मिल सकती। अपनी पूर्ण शक्ति को जब माता द्रोपदी देवी ने भीष्म, विदुर, द्रोणा और अपनी पतियों से निराश हो गई तब उसने भगवान् को अतिभाव से पुकारा। तब उन्हें तुरन्त सहारे का प्रबन्ध करना पड़ा। विलक्षण वस्त्र धारण करना पड़ा तब द्रोपदी की लाज बच गई। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् की दी हुई समस्त शक्ति का सम्पूर्ण उपयोग कर देने के बाद भी और मांगनी चाहिए। कि वह शक्ति मिलेगी। इससे पूर्व नहीं। क्योंकि भगवान् हमारे हितचिन्तक है। हित की दृष्टि से ही शक्ति देते हैं।

भगवान् का कोई रूप नहीं और उनका कोई आकार नहीं, जिससे हम उसको देख सकें। उसका अनुभव तो योगियों की योग साधना के माध्यम से समाधि में होता है। "रूपो में" परमेश्वर कर्म फल दाता है। कोई मनुष्य है, कोई विष्टा का कीड़ा, कोई पशु, कोई पक्षी अनेक प्रकार के जीव-जन्तु हैं। जिनकी गणना भी नहीं की जा सकती है। एक जाति में रहने वाले एक ही गर्भ से निकले हुए कोई दुःख भोग रहा और कोई सुख।

अग्नि देव की हम उपासना करते है, क्योंकि भगवान् को ज्योतियों की ज्योति कहा है। भगवान् की ज्योति की व्यापक रूप से हमें प्रतीति हो रही है। हमारे देवता और पिता हैं उनकी तृप्ति होती है।

प्रदत्त दान द्वारा—श्री शिव प्रकाश, भार्गव डी-२६, कमला नगर, दिल्ली—७

भगवान् जो देवताओं का देवता है उनकी भी तृप्ति होती है, प्रसन्नता होती है । परमात्मा ने मानव के अंग प्रत्यंग में मिलकर एक प्रकार से सुगन्धित करती है । अर्थात् कण कण में उसे तृप्त करती है ।

हे दुष्ट विनाशक पतित पावन ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! दुष्ट राक्षसों के नाश करने वाले, अमर शुद्ध स्वरूप शरणागत पतितों के भी पावन करने वाले, संसार में आप ही स्तुति करने योग्य हैं । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पुरुषार्थ आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना से ही प्राप्त होते हैं, अन्य की स्तुति से नहीं । इसलिये हम लोग आपको ही मोक्ष आदि सब सुखों का दाता जानकर, आपकी ही शरणागत हुए, आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं ।[1]

सारी विभूति के स्वामी इन्द्र परमेश्वर दानशील धर्मात्मा पुरुष को बहुत प्रकार का धन देते हैं । वह अन्तर्यामी प्रभु उस दाता पुरुष को जानते हैं कि यह पुरुष दान द्वारा अनेकों को लाभ पहुँचायेगा, इसीलिये इसको बहुत ही धन देना ठीक है । प्यारे मित्रो ! ऐसे समर्थ प्रभु की उपासना करने से हमारा दारिद्र दूर होकर इस लोक में तथा परलोक में हम सुखी हो सकते हैं ।[2]

परमात्मा महाज्ञानी और महा उद्योगी है । अनेक प्रकार

---

१ अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः
शुचिः पावक ईड्यः ॥ अथर्व ८-३/२६ ॥

२ य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग । अर्थ० २०-६३/४ ॥

के संग्रामों में विजयशाली है। ऐसे परमात्मा की भक्ति करने वाले पुरुष को चाहिए की वाह्याभ्यन्तर संग्राम को जीतकर अनेक प्रकार के धन को प्राप्त होकर सुखी हो। स्मरण रहे कि प्रभु की भक्ति के बिना कोई ज्ञान व कर्म हमारा सफल नहीं हो सकता है। इसलिए उस प्रभु की शरण में आकर उद्योगी बनते हुए धन प्राप्त करें।[1]

उपासना में भावना

श्री स्वामी सियाराम जी महात्मा बड़े योगी थे। वे गुरुकुल कांगड़ी में पढ़ाते थे। सरल स्वभाव के व्यक्ति थे वे कम मिलते जुलते थे। अक्सर पृथक रहते थे। बहुत कम सभा सोसायटी में जाते आते थे। लोगों को सन्देह हुआ कि वे नास्तिक हैं। उस बात की जांच के लिए श्री रामदेव प्रोफेसर को नियुक्त किया। उनके साथ श्री रामदेव भी भ्रमण करने के लिये जाने लगे जब उनकी स्वामी जी के साथ कुछ मित्रता हो गई तो एक दिन श्री रामदेव जी ने पूछा कि स्वामी जी आप आस्तिक हो या नास्तिक? पुनः वही प्रश्न स्वामी जी ने भी प्रोफेसर साहब से किया कि आप आस्तिक हैं या नास्तिक?

स्वामी जी ने पूछा परमेश्वर क्या है?

रामदेव जी ने कहा, परमेश्वर सर्वव्यापक, कर्मफलदाता है, जीवन मरण का दाता है, सुख-दुःख, रहन-सहन, पालक और रक्षा की व्यवस्था करने वाला है।

---

१ त त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये। अथर्व २०.६८.९॥

स्वामी जी ने पूछा कि जंगल में सिंह आ जाये तब क्या करोगे ? तो प्रोफेसर जी ने कहा शोर मचाऊंगा, साथियों की पुकार करूंगा, हो सकेगा तो अग्नि भी जलाऊंगा, हिंसा की भावना नहीं अपनाऊंगा।

स्वामी जी ने कहा कि तुम्हें परमेश्वर पर भरोसा नहीं। परमेश्वर तो स्वयं फलदाता और न्यायकारी है। यदि सिंह इसलिए आया कि तुम्हारे कर्मफल इस योग्य हैं कि तुम्हारा अन्त हो जाये, तो सिंह तुम्हें चीर फाड़ देगा। यदि नहीं तो परमात्मा स्वय रक्षा करगे।

यज्ञादि शुभ, कर्म, करते है। इनका तात्पर्य केवल यही है कि हम आस्तिक बने। अर्थात् इश्वर की आज्ञाओं का पालन करें। यज्ञादि शुभ कर्म करें, सेवा, दूसरों की सहायता, परोपकार, दान देने को उदारता, यह सब स्वार्थ रहित होवे।

प्रभु की रचना देखें, पशु, पक्षी, फल, हवा, जल, अग्नि आंख से देखना, कान से सुनना। मानव नकल करता है और मानव अपने ज्ञान को बढ़ाता है। प्रभु का ज्ञान अपार असीम और अनन्त है।

स्त्री के बच्चा पैदा होता है। पहले सिर बाद में पैर। लेकिन पशु के पहले पैर बाद में सिर आदि। यह सब उस प्रभु की रचना है।

पेड़ों को देखो इनको खुराक कौन देता है। जब कि मानव को उसके लिये अनेक साधन जुटाने पड़ते हैं। छोटे छोटे पेड़ों पर बड़े बड़े फल जैसे खरबूजा, तरबूज, काशीफल,

---

प्रदत्त दान द्वारा—दिल्ला क्लीनिक, ११६ ई, कमला नगर, दिल्ली-७।

ककड़ी आदि। जब कि बड़े बड़े पेड़ों पर छोटे छोटे फल जैसे आम, सतरा, मौसमी आदि। अगर कहीं बड़े बड़े पेड़ों पर खरबूजा आदि होते और छोटे छोटे पेड़ों पर आम आदि होते तब कितनी हानि होती। ईश्वर की रचना बड़ी वैज्ञानिक ढंग की है।

उपासना में हम अधिकाधिक उसके होकर चलें। जो उसको अभीष्ट है, वही करें,। जो अप्रिय है वह न करें। जैसे पिता अपनी सम्पत्ति में से कुछ भी धन आदि पुत्र को नहीं देता है। क्योंकि पुत्र पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है। बुरे बुरे कार्य करता है। नाना प्रकार के कष्ट पिता को देता रहता है। भगवान् की भक्ति में हम अपने से छोटे के प्रति स्नेह, बराबर वालों के प्रति प्रीति और बड़ों के प्रति सेवा, भक्ति के रूप में करें।

उपासक को सदा यह विचार करना चाहिए कि प्रभु की कृपा मुझ व्यक्ति पर क्या विशेष और कब कब हुई और कब न्याय का भान किया। जब साधक ऐसा स्मरण करता है। दया के भान से उस की प्रभु में प्रीत, न्याय के ज्ञान से पाप से सदा भय बना रहता है। प्रभु की दया तो प्रत्यक्ष है ही। प्रभु ने हमारे कल्याण के लिए सूर्य, बनाया, चन्द्रमा पृथ्वी बनाई। वायु, जल, अन्न, धन पैदा किया। सूर्य अन्न, जल, वायु न होते तो हमारा जीवन कैसे स्थिर रहता।

प्रभु देव की दया दो प्रकार की है। एक तो सामान्य जो सब प्राणीयों के साथ एक जैसी है, दूसरे वह दया जो विशेष ज्ञानी व्यक्ति के साथ जुदा जुदा प्रकार की है। प्रभु की दया

प्रदत्त दान द्वारा—श्री एस० के० सिंगल, १८ डी, कमला नगर, दिल्ली-७

विशेष को जब मनुष्य स्मरण करते है तो अनायास अश्रुपात हो जाते हैं और प्रभुदेव में अपने आप श्रद्धा और प्रेम भक्ति पैदा हो जाती हैं।

भगवान् में अटूट विश्वास करना यह साधारण सी बात लगती है। भक्ति मार्ग पर चलने वाला प्रत्येक व्यक्ति सरलता से कह देता है कि मैं आस्तिक हूँ और भगवान् में विश्वास रखता हूँ। कहना तो सहज है, परन्तु जीवन में उतारना इतना सरल नहीं है। यदि इसे कार्यान्वित किया जाय तो परम कल्याण हो सकता है। परन्तु ऐसे बहुत कम व्यक्ति होगें जो इस सिद्धान्त को पूरी तरह कार्यान्वित कर पाते हों। इस सिद्धान्त को अच्छी तरह समझना आवश्यक है। अत: इसका विश्लेषण करना लाभप्रद होगा। साधक को यह विश्वास करना होगा कि सृष्टि की रचना करने वाली कोई एक विलक्षण शक्ति है। जितने प्राणी-नर-नारी, जीव-जन्तु, जड़ चेतन, संसार में दिखाई देते हैं। ये सब उस शक्ति (या भगवान्) के ही बनाये हुये है अथवा यों कहिये कि यह सब उनके ही रूप हैं। मनुष्य इनमें से किसी व्यक्ति या वस्तु को अपना मानकर विश्वास कर लेता है, यहीं भूल करता है। मनुष्य जो भोजन करता है, वह भी भगवान् का दिया हुआ है, अत: भगवान् को निवेदित करके ही उसे प्रसाद रूप से पाना चाहिये। उससे सात्विक विचार बनते है। संसारिक व्यक्तियों या वस्तुओं को अपना मान लेने से अंहकार. ममता एवं अन्य विकार उत्पन्न होते हैं। मनुष्य संसार के बन्धन में पड़ जाता है। और घोर दु:ख का सामना करता है।

संसार की प्रत्येक वस्तु भगवान् से सम्बद्ध है, इतना मान लेने के बाद यह मानना होगा कि भगवान् का प्रत्येक विधान

मंगलमय है। प्रत्येक प्राणी अनुकूल अवस्था चाहता है और प्रतिकूल परिस्थिति आने पर दुःख का अनुभव करता है। अच्छा साधक वही है, जो प्रतिकूल अवस्था में भी प्रसन्न रहे और उनमें भगवान् की विशेष कृपा का अनुभव करें। बच्चा जब गंदा हो जाता है तब मां उसे साफ करती है। बच्चा कितना भी रोये पर मां उसके रोने की परवाह न करके उसे साफ कर ही देती है फिर उसे गोद में लेकर प्यार करती है। ठीक उसी प्रकार भगवान् भक्त पर जब विशेष कृपा करते हैं, तो उसके सामने प्रतिकूल अवस्था रखी जाती है प्रतिकूल परिस्थितियों से वह कसौटी है जिसमें भगवान् के प्रति मनुष्य के रूप श्रद्धा विश्वास की इच्छा होती है। इस अवस्था में अगर उसका विश्वास डिग गया वह दुःख का अनुभव करे और सम्भवतः भगवान् को भला बुरा भी कहे तो उसका अर्थ है कि उसका भगवान् में विश्वास नहीं है। इस कसौटी में जो खरा निकले वही कह सकता है कि उसका भगवान् में अटूट विश्वास है।

भगवान् सर्वव्यापक है। कहने को सभी कह देते है कि भगवान् सर्वव्यापी है, परन्तु इसका वास्तविक अनुभव विरले ही कर पाते हैं। भगवान् हर जगह विद्यमान है, जड हो या चेतन हो, सभी में व्याप्त है। ऐसा विश्वास होने पर मनुष्य निर्भय हो जाता है। जब भगवान् साथ में है, तो डर क्या है? यदि यह अनुभव रहे तो भगवान् हर समय और हर जगह विद्यमान है तो मनुष्य पाप करने से बच जाता है। पाप कर्म से बचा रहेगा तो वह अधोगति में कभी न जायेगा। फिर तो कल्याण ही कल्याण है। सभी प्राणी भगवान् के हैं और सभी में भगवान् है। यह समझ कर सभी में भगवद्भाव रखना चाहिये।

चाहे कोई मनुष्य गरीब हो या धनी, किसी भी जाति उसके प्रति घृणा एवं हीनता का भाव न करें। किसी के प्रति क्रोध न किया जाय, किसी का अनादर न करें, न उसे दुतकारें। किसी का अहित तथा निन्दा न करें। मनुष्य जन्म इसीलिये मिला है कि अधिक से अधिक परोपकार करें न कि अपकार।

भगवान् सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापक है सर्वज्ञ है और सुहृद है. अतः उसका नित्य निरन्तर स्मरण करना चाहिये, क्योंकि भगवान् नाम जप करने से शान्ति मिलती है और पाप नष्ट होते हैं। मनुष्य जो भी कर्म करे भगवान् का ही समझ कर और भगवान् की प्रशंसा के लिये ही करे तो उसकी हर क्रिया भजन बन सकती है।

प्रत्येक उपासक को उचित है कि वह अपने आन्तरिक और बाह्य विघ्नों को शान्त रखे।[1] परमात्मा की पूजा यदि मन और श्रद्धा से की जाय तो सर्वफल देती है, और उस उपासक के सर्वविघ्न भी नष्ट हो जाते हैं।[2] परमेश्वर के गुण-गान से स्तोता को उनके अनुग्रहों का नित नया ज्ञान होता है। और सन्मार्ग पर चलने की समझ उसमें उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार वह परमेश्वर के अधिकाधिक निकट होता चला जाता है।[3] ईश्वर की उपासना से मनुष्य में उसके गुण आते हैं अतः वह उपासक उपास्य के समान माना जाता है। और मनुष्य की इच्छा भी बलवती होती है अतः

---

१ ऋग्वेद ८/२१/१२। २ ऋग्वेद ८/४१/१॥
३ ऋग्वेद ८/५१/५।

तदनुसार यह प्रार्थना है ।1

जो उसकी उपासना अन्त:करण से करता है वह सर्वधन सम्पन्न होता है, अतः हे मनुष्यो ! केवल उसकी उपासना किया करें।2 जिस परमात्मा की स्तुति प्रार्थना सदा से ऋषिगण करते आये हैं उसी की पूजा हम भी करें।3 अन्त में आशीर्वाद मांगते हैं : पापों और शत्रुओं से बचने के लिए केवल ईश्वर की शरण है, और उसमें श्रद्धा और विश्वास और सबसे बढ़ कर उसकी आज्ञा पर चलना है।4 उपासक धैर्य से ईश्वर की उपासना करें, सज्जनों की रक्षा और अपनी आयु बढ़ावे।5 शुद्ध अन्त:करण से प्रभु की उपासना श्रेष्ठ ऐश्वर्य के प्रदाता के रूप में करो। उस प्रकार यह उचित प्रेरणा देगा कि जिसके अनुसार कार्य करने से आदरणीय शुभ ऐश्वर्य प्राप्त होगा।6 इस मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए यह उपदेश किया है कि हे सांसारिक जनो! सूर्य द्वारा परमात्मा की महिमा का अनुभव करते हुए उनके साथ अपने को जोड़ो। अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त काल में जब सूर्य द्युलोक को प्रकाशित करता हुआ अपने तेज से उदय होता है। उस काल में मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वह आलस्य को त्याग कर परमात्मा की महिमा को अनुभव करते हुए ऋत–सत्य के आश्रित हो, उस महान् प्रभु की उपासना में संलग्न हो और याज्ञिक लोग उसी काल में यज्ञों द्वारा परमात्मा का आव्हान करें अर्थात् मनुष्य मात्र को ब्रह्म ज्ञान का उपदेश करें जिससे सब प्राणी परमात्मा की आज्ञा का

---

१ ऋग्वेद ८/१९/२५। ४ ऋग्वेद ८/६/२५॥

२ ऋ० ८-१९-३६। ३ ऋ० ८-२३-१६। ४ ऋ० ८-४४-३०।

५ ऋ० ८-७१-६। ६ ऋ० ८-८८-६॥

पालन करते हुए सुख तूर्वक अपने जीवन को व्यतीत करें, यह परमात्मा का उच्च आदेश है।[1]

ज्ञान, बल, धन आदि समृद्धि की प्राप्ति में अनेक रुकावटें आती हैं—उपासक उनको भगवान् की सहायता से ही दूर कर सकता है। कैसे? जब कि वह भगवान् के गुणों का कीर्तन करता हुआ और उसको अपने अन्तःकरण में धारण करने का यत्न करता हुआ भगवान् के प्रति समर्पित हो जाये।[2] मानव के शरीर में, मन में तथा इनके द्वारा उसके आत्मा में भी ऐसे दोष दुर्भाव प्रविष्ट हो जाते है।

जो घुण के समान इस को जर्जरित कर देते हैं—उन से बचाव परमेश्वर की शरण में जाने से उसके गुणों का निरंतर वर्णन करने से होता है।[3] परमेश्वर महादानी हैं, उसके गुणगान से उपासक भी दानशील बनता है—यह दान शीलता उसके ऐश्वर्य का कारण बनती है।[4] ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के गुणों का निरन्तर श्रवण, मनन, एवं निदिध्यासन करते रहना चाहिए। साधक को उसे ही अपना सबसे अधिक प्रिय समझना चाहिये। पदार्थों के ज्ञान के साथ साथ उसका महत्त्व जब हृदयङ्गम होगा तो वह भी अचानक उद्भूत हो जायेगा।[5]

---

१ ऋ० ७-७५-१ । २ ऋ० ८-६०-४ ।।

३ यदत्युपजिह्विका यद्वम्रो अति सर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतम् । ऋग्वेद ८-१०२-२१ ।।

४ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मघोर्नं पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ऋ. ८-१०३-६.।

५ प्रेष्ठम् प्रियाणां स्तुह्या सावातिथिम् ।
अग्नि रथानां यमम् ।। ऋग्वेद ८-१०३-१० ।।

उपासक को परमसत्य का ज्ञान कराने वाले वेद, उपवेद, था उनके अगभूत शास्त्र बचनों का विधिवत् अध्ययन करना चाहिए।[1]

पृथ्वी पर गर्मी के मौसम पर आन्धो तूफान आते है, लू भी चलता है, जगह-जगह मिट्टी के ढेर भी जगलों में लग जते है, जमीन ऊंची नाची हो ज ती है। कौन साफ करता है। नदियों का जल खराब हो जाता है पृथ्वी पर इतनो गन्दगी धूल के कारण हो जाती है। यही हाल पहाड़ों की चोटियों का है। धूल पत्तियां कैसे मैली दिखाई देती हैं। क्या कभी जगलो, पहाड़ों की सफाई सरकार कराती है। भगवान् की तीन ज्योतियां जो इन सब को पवित्र कर देती हैं अर्थात् अग्नी, जल, तथा वायु।

उपासना में आचरण

आहार—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शुद्र कोई भी क्यों न हो शास्त्रों के द्वारा बतलाई हुई विधि के अनुसार न्याय पूवक अपने परिश्रम द्वारा उपार्जित द्रव्य से स्वेन जो सात्विक आहार करता है उसका नाम सत्य सात्विक आहार कहलाता है। भगवान् ने सृष्टि में जिस प्रकार के जीव-जन्तु बनाये हैं उनके लिये उचित प्रकार के आहार की रचना भी की है। मासाहारी, सिंह कुत्ते भेड़िये अन्य की आकृति दांत, पंजे, आदि की तुलना करके देखो त यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्य का आहार अन्य, दुग्ध फल आदि शाकादि ही है। मनुष्य मांस, भक्षण, प्राणी नहीं है। वह प्रकृति के विरूद्ध है और ऐसा काम करके वह नाना विपत्तियों को बुलाता है।

---

१ वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम्।
इन्द्रात्परि तन्वं ममे॥ ऋग्वेद ८-७६-१२॥

जी को विष दे दिया और उनको इस बात का पता लग गया था उन्होंने फिर भी उस सेवक को चले जाने के लिये कहा और अपने पास से घन देकर विदा किया ।

आचरण:—साधक के व्यक्तित्व और आचरण पर दिव्य विभूति का प्रभाव इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है । जिसका सम्बन्ध उसके मन और इन्द्रियों से हो । दिव्य विभूति के परिणाम स्वरूप प्रेम त्याग, दया, निर्भयता सभी शुभ गुण साधक के व्यक्तित्व में अपने सहज और चरमावस्था में प्राप्त होते हैं । जिस आदर्श रूप में इन गुणों का उसमें समावेश होता है उस रूप में अन्यत्र कहीं भी देखने में नही आते हैं ।

सद्भाव और सद्व्यवहार, कि 'सत' परमेश्वर का नाम है। अत: उसे प्राप्त करने वाले भाव और व्यवहार ही सद्भाव और सद्व्यवहार हैं । उन्हीं को साधु भाव कहा गया है । जिन पुरुषों में उत्तम भाव होते हैं वे परमात्मा की प्राप्ति के पात्र समझे जाते हैं, अत: प्राप्ति में हेतु होने से इनको सद्भाव कहा गया है । उपासना में हम सत्कर्म तो करें । परमपिता परमात्मा सत् है । इसलिये उनको निमित्त किये जाने वाले कर्म भी सत्य कर्म हैं ।

कर्म चैव तदथो यं सदित्ये वाभिधीयते । गीता १७-२७ ।

अतः मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष द्वारा जो कुछ भी कर्म किया जाता है, वह शब्दार्थ ही होते हैं । हमें मधुर भाषी बनना चाहिये । वाणी का दुरुपयोग करना आत्मापराध है । कटु सत्य न बोलो, कटु सत्य बोलने की अपेक्षा चुपचाप रहना ही अच्छा है ।

उदाहरण स्वामी जी स्त्री का दर्शन तक भी नहीं करते थे। दर्शन भी उनकी दृष्टि में एक प्रकार का मैदुन समझा जाता था। भूले भटके कोई कन्या उनके सामने आ जाती थी तो वे उधर से अपना मुख फेर लेते थे। उदयपुर में श्री कविराज श्यामदास ने पूछा कि महाराज! आप स्त्रियों को देख कर मुख क्यों फेर लेते हैं? तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कविराज जी! स्त्री ब्रह्मचारी की आंख में सूई के समान चुभ जाती है। इसलिए ब्रह्मचारी को उसकी ओर न देखना चाहिए। स्वामी जी आचार को बड़ा महत्व देते थे। वे अपने जीवन में मनुस्मृति (१-१०९ तथा ४-१५६) के सिद्धान्तों का पालन करते थे।

आदर और प्रेम ससार के अन्दर जितने भी प्राणी हैं और जितनी भी योनियां हैं उनमें और मनुष्य में अन्तर तो बहुत है। पर विशेष अन्तर तो यह है कि परमात्मा ने मनुष्य को दो गुण ऐसे दिये हैं जो चुम्बक का काम करते हैं। वह दो गुण आदर और प्रेम हैं। कुत्ते का कुत्ते से न प्रेम है न आदर। कोई भी पशु पक्षी, कीट, पंतग आदि जितने भी जन्तु चाहे वे आरण्य हो अथवा ग्रामीण, कोई भी आकाश में रहने वाले हो, अथवा भूतल पर रहने वाला, प्राणी एक दूसरे को आदर नहीं करता। एक मनुष्य ही है जो आदर करता है और आदर पाता है। प्रम करता है और प्रेम पाता भी है।

मानव के प्रेम की सीमा इतनी बढ़ी हुई है कि हिंसक प्राणी भी हिंसा छोड़ देते हैं। शेर, चीते आदि योगियों के पास जंगल में गाना सुनने जाते हैं। जैसे एक महान आत्मा के दर्शन के लिये लोग जावे और लाखो की संख्या में जाये।

उनमें छोटे, बड़े, सभी जायें। उनके दर्शन से एक बार पाप वासना दुग्ध कर देती है। इसी प्रकार हिंसक पशु के हिंसा को एक बार तो मूर्छित कर देते है। मनुष्य आदर करता है और आदर पाता है। कुत्ता बड़ा आदर करता है, जिसका जो उसको रोटी डालते है। सिर झुकाकर, चरणों को चूमता है। गाय और घोड़ा अपने मालिक को आदर करने है। घोड़ा व गाय जब देखते है कि मेरा मालिक दाना, चारा. डाल रहा है, हिनहिनाता है, या जैसे हम नमस्ते करते है, वह अपनी क्रियाओं व चेष्टाओं से कानो को खड़ा करता है प्रत्येक प्राणी अपने मालिक के लिये कितना आदर करता है। निकृष्ट बन्दर भी कितना करता है।

जब भगवान् अपने भक्त से प्रेम व आदर करता है तो इतना प्राणी भी क्यों न आदर करे ?

जो मनुष्य परमात्मा से प्रेम करता है वही सब प्राणियों से प्रेम कर सकता है आदर और प्रेम कब छोड़ते है। जब अंहकार आ गया तब आदर चला गया। आदर को काटने वाला अंहकार है स्वार्थ आ गया तो प्रेम चला गया। प्रेम को काटने वाला स्वार्थ है अर्थात् अंहकार और स्वार्थ अशान्ति मचा रहे है। मानव कितना कृतघ्न है। परमात्मा ने मनुष्य को आदरणीय बनाया है। पेट पूर्ति के लिये पशु को भी सिर झुकाना पड़ता है सिर वही झुकाता है जिसका आदर न हो। मानव चाहे कोई कैसा क्यों न हो वह रोटी खाते हुये सिर न झुकायेगा बल्कि हाथ से रोटी खायेगा। आदर से मुख में देगा। कुत्ता तो रोटी का ग्रास डालने वाले के आगे पूंछ हिलाये और पांव चूमे, उसकी कृतज्ञता प्रकट करें, परन्तु मनुष्य बड़ा कृतघ्न, जिस

परमात्मा ने उसको इतना आदर दिया वह उसकी उपासना नहीं करता। हमारे अन्दर अहंकार आ गया और स्वार्थ स्वार्थ आ गया। मानव की भक्ति स्वार्थ रहित हो तभी उसे फल मिलता है।

दयालुता—भगवान् की दयालुता पर विश्वास जब तक मनुष्य परमात्मा को नहीं प्राप्त कर लेता तब तक नित्य नये जन्मों में फंसाता ही रहता है। हम लोग अनन्त जन्मों से यही करते आ रहे है। परन्तु यह नहीमानना चाहिये कि उबरने की कोई सूरत ही नहीं है। तुम्हे भगवान् पर श्रद्धा रखनी चाहिये कि वे उतारने वाले है उनकी शरण लेते ही सारे जाल सदा के लिये कट जाते है; घबराओ नहीं, अटकी नाव भगवान् की कृपा से अनुभव रूपी अनकूल वायु का एक झोंका लगने पर चल पड़ेगी। भगवान् की दयालुता पर विश्वास करो। तो दुःख कष्ट और विपत्तियां आ रही हैं। उन्हें भगवान् कृपा का आशीर्वाद समझो और प्रत्येक कष्ट के रूप में दयालु भगवान् के दर्शन पर उन्हें अपनी सारी सत्ता समर्पित करने की चेष्टा करो, कष्टों को सहन करो। परन्तु उनसे छुटने के लिये कभी भूलकर भी कुमार्ग पर चलने की कायरता के वशीभूत मत हो, और लड़ते रहो, मनकी बुरी वृत्तियों से शरीर और मनुष्य प्रसन्न निरन्तर चेष्टा करते रहो। भगवान् के नाम का स्मरण तुम सदा करते रहो। और उसे उतरोत्तर बढाओ।

पवित्रता—भारतीय दर्शनों और धर्मशास्त्रों में सत्य की उपलब्धि के लिये सामान्य बुद्धि पर बल न होकर राग-द्वेष रहित, त्यागपूर्ण और रागमय जीवन को अग्निशिखा में तपाकर विशुद्ध की हुई बुद्धि पर बल दिया है।

बुद्धि को पवित्रता के लिये संयम का होना बहुत जरुरी है। क्योंकि उसे इन्द्रियों और उसके विषय उसी प्रकार हर लेते है। जिस प्रकार प्रचण्ड वायु समुद्र में नाव को हर लेता है। सामान्य बुद्धि आत्मा, परमात्मा से सम्बन्धित प्रश्नों को हल करने की क्षमता नहीं रखती। जो संयमी होता है और जिसकी इन्द्रियां वश में होती है और उसकी बुद्धि स्थिर और तत्व में प्रतिष्ठित होती है।[1]

जिसका अन्त:करण अपने बश में है, जिसमें राग द्वेष नहीं, वह पुरुष अपने बश में की हुई इन्द्रियों के द्वारा विषयों को भोगता हुआ (प्रसाद) (प्रसन्नता) प्राप्त करता है। उस प्रसाद से समस्त दुर्गुण का अभाव हो जाता है, और उस प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि परमात्मा में शीघ्र ही स्थिर हो जाती है।[2]

उदाहरण—कुछ लोगों ने आपस में सम्मति करके एक अत्यन्त सुन्दरी वैश्या का प्रबन्ध किया और उसको धन देकर स्वामी जी के पास भेजा कि वहाँ जाकर उनका ब्रह्मचर्य व्रत भंग करे। वह वेश्या बन ठन कर स्वामी जी के पास गई। स्वामी जी उस समय समाधि में मग्न थे। वह वेश्या उनकी समाधि समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगी। उनके तेज पूर्ण मुख देख कर उसका हृदय भयभीत हो गया था। जब स्वामी जी की समाधि समाप्त हुई और उन्होंने आंखें खोली तो एक

---

१ इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ गीता २|६७

२ तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ गीता २|६८

अतीव सु दरी स्त्री को अपने सामने खड़ी पाया। उन्होंने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए उसके यहां आने का कारण पूछा। वह घबरा उठी और उसके मुख से ये शब्द निकले महाराज ! मैं आप जैसा रूप वाला एक पुत्र चाहती हूँ। स्वामी जी ने तत्काल उत्तर दिया—'माता तुम मुझे अपना पुत्र समझ लो।" क्या ऐसा पुरुष संसार में हो सकता है ?

कर्तव्य पालन:: विवेक पूर्वक निर्णय, कर्तव्य पालन का सामर्थ्य मानव मे विद्यमान है। कारण जिस मंगलमय विधान में उसे विवेक मिला है, उसी से कतव्य पालन का सामर्थ्य भी मिला है। वास्तविक विधान कहते हैं उसको जिसमें पालन सर्वथा स्वाधीन हो। धर्म पालन करने के लिये हिंसा का त्याग प्रथम सीढ़ी है। जिसके हृदय में हिंसा का भाव नहीं है वहां धर्म का स्थान कहां है। पृथ्वी हमारी माता है। वही पालन करती है। पिता सूर्य है जो हम प्रकाश तथा ज्ञान देता है। जिसा पृथ्वी माता और पिता सूर्य के हमको सुख दे रहा हैं। हम भी प्रत्येक प्राणीमात्र के साथ प्रीति, प्रेम, सद्भावना का व्यवहार करें। दीन दुखियों की सहायता कर।

श्रद्धा—उपासना में प्रभु के प्रति श्रद्धा का बड़ा महत्व है। ससार की कोई भी अग्नि श्रद्धा के बिना प्रदीप्त नहीं होती और कोई भी त्याग और कोई भी बलिदान श्रद्धा के बिना नहीं किया जा सकता। किसी भी प्रकार की सफलता पाने के लिए त्याग करना और अग्नि प्रज्वलित करना आवश्यक होता है हम जग उन्नति करना चाहें हमें एक तो आत्म बलिदान के लिए तयार होना चाहिए। दूसरे वह बलिदान जो उच्च ध्येय के लिये करना होता है। उस ध्येय की पवित्र अग्नि हमारे अन्दर धधक रही होनी चाहिये। हम अन्दर की अग्नि को जला

श्रद्धा मय पुरुष बनें। (ऋ० १०-१५१-४)

सब जीवन मृतम समान है, जब तक कि इसमें श्रद्धा का प्राण मौजूद नहीं हैं। प्रत्येक प्राणधारी जीव को शरीर में रहने और सुचारू रूप से कर्म करने के लिए प्रजापति ने श्रद्धा का आविष्कार किया। "श्रत्" जीवन का "धा" धारण करने की विशेष उत्कट अभिलाषा कहलाती है। यह उसी कला का प्रताप है कि प्रत्येक प्राणी सदा और सर्वत्र जीते रहने, शरीर में प्राणों को धारण किये रहने के लिए प्रबल प्रयत्न करता है। मरना नहीं चाहता है। यदि इस कला का अविष्कार न किया होता तो प्राणधारियों को जीवित रहना सर्वथा असम्भव हो जाता। हम इस जगत् में श्रद्धा धारण करें। सत्य धारण से परमेश्वर को भी प्राप्त कर सकता है स्वामी दयानन्द जी, ईश्वर पर श्रद्धा, विश्वास ही था जिसके बल पर उन्होंने अंग रक्षक लेना स्वीकार नहीं किया। श्रद्धा का उपासना में बड़ा महत्व है। (ऋ० १०-१५१-१ से ६) यजु० ८-३६॥१६ कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला है।

अहिंसा—दयालु पुरुष ही संकट के समय दूसरे जीवों पर दया का पात्र होता है। बड़े ही खेद का विषय है कि मनुष्य स्वयं तो किसी के द्वारा थोड़ा सा भी कष्ट पाने पर भी घबड़ा उठता है और चिल्लाने, पुकारने लगता है, परन्तु निर्दोष मूक जीवों को इन्द्रियों के वश, बुरी आदत और प्रमाद वशमारकर या मरवाकर, इनका मांस खाने तक में नहीं हिचकता। प्रभु की दया को अनुभव करो, उस पर बिचार करो परमात्मा कितना दयालु है कि छोटी छोटी बेलों में बड़े-बड़े फल आदि लगा रखें हैं सौर बड़े-बड़े पेड़ों पर छोटे फल लगे हैं। अगर

हवा, जब जोर से चलती तो वे फल नीचे गिरते तो कितनी हानि होती। प्रभु की रचना पूर्ण वैज्ञानिक है। स्वामी दयानन्द जी मनुष्यों पर ही दया नहीं करते थे, प्रत्युत मूक पशुओं की हत्या के प्रबल विरोधी थे उनका कहना था कि किसी के प्राण लेना का क्या अधिकार है। सब प्रकार से सब काल में सब प्राणियों के साथ वैर छोड़ के प्रेम प्रीति से वर्तना चाहिए।

प्यार—जिस प्राणी को भूमि आश्रय देती है, जल प्यास बुझाता है। सूर्य उष्णता और प्रकाश देता है। वायु श्वास का आदान प्रदान करती हैं। चन्द्रमा शीतलता तथा सब औषधियों वनस्पति प्रदान करता है। आकाश अवकाश देता है। इस आकाश का आविष्कार होने से किसी भी पदार्थ में गति का होना सम्भव हो सकता है। यदि आकाश नहीं होता तो यह लोक एक देश से दूसरे देश में नहीं पहुँच सकता। सभी प्राण धारियों के अंगों में अनेक प्रकार की गतिविधियां हुआ करती हैं। उस सारी गतिविधियों का होना आकाश के कारण ही सम्भव हो सकता है। क्या यह आदर और प्यार के पात्र नहीं हैं। किसी का अनादर और तिरस्कार न करने से आदर तथा प्यार करने की भावना स्वतः आ जाती है। काम वो करना चाहिए जिससे किसी का हित हो। जिस व्यक्ति से किसी की हानि नहीं होती वही दूसरों के लिए लाभ प्रद है। ईश्वर के हम सब प्राणी सन्तान हैं। वे सबसे प्यार ही करते हैं। अगर हम सब उसकी आज्ञा का पालन करें तथा उसके प्यार को समझ ले तब सब जगत् में शान्ति का का वातावरण हो जायेगा।

प्रदत्त दान द्वारा—गायत्री देवी प्राईवेट चैरीटेबल ट्रष्ट' १८—D कमलानगर दिल्ली ७

संतोष की भावना ने ही भारतवासियों को कर्त्तव्य विमुख बनाकर पराधीन बना दिया है, यह भावना भ्रम मात्र है। बल्कि संतोष का भाव और तृष्णा की प्रबलता ही देश, प्रेम, और विश्व प्रेम के आदेश भावों को कुचल कर सबको सुखी देखने के उदार भाव को नष्ट कर मनुष्य के मन में देश और विश्व के प्रति विश्वास घात करने वाली नीच वृतियों पैदा कर देती हैं। भोग तृष्णा के कारण मनुष्य अपने सामन्य से व्यक्ति गत स्वार्थ के लिये देशात्मा और विश्वात्मा का हनन करने को तैयार हो जाता है। फलतः अपनी ही मूर्खता से अपना विनाश, साधक कर बैठता है। इससे यह सिद्ध है कि असतोष उन्नति का नहीं वरन अवनीत का मूल है। असन्तोष से जीवन में जाग्रति नहीं आती। जीवन में सच्ची जाग्रति आती है, सत्वगुण के बढ़ने से "सर्व द्वारेषु देहेस्मिन प्रकाशः उपजायते" गीता १४.११. सन्तोष–आलसी और अकर्मंय पुरुषो के काम की वस्तु नहीं है आलसी और अकर्मंय तुरुष सन्तोषी नहीं होते वे तो कामनाओं की ज्वाला में सदा जलते रहते हैं। उनकी तृष्णा कभी नहीं मिटती। कुशलता पूर्वक कर्म करने की शक्ति और मति न होने के कारण वह संतोष का नाम तो लेते हैं। उनका यह सन्तोष वस्तुतः आध्यात्मिक पथ के परम साधन रूप सन्तोष से सर्वथा भिन्न एक तामसिम भाव मात्र है। संतोष गो मनुष्य को विश्याशक्ति से छुड़ा कर तृष्णा से तपते प्रवाह ो प्रथक कर ईश्वरविमुख बनाकर सच्चा कर्तव्यशीम बना ता है। शान्ति चित्त सन्तोषी पुरुष को अपने सारे व्यक्तिगत वार्थ को छोड़कर निःस्वार्थभाव से देश और विश्व के कल्याण लिए सम्यम रूप से यथायोग्य कर्त्तव्य कर्म का आचरण कर

सकता है। जो सदा धर्मानुष्ठान से पुरुषार्थ करके प्रसन्न रहना और दुःख में शोकातुर ना होना, किन्तु आलास्य का नाम संतोष संतोष नहीं है।

पृथ्वी में जितने खाने, पीने के सामान, धन, दौलत, हाथी, घोड़े, गाय. बैल, स्त्री, पुत्र, हैं, उन सबके मिल जाने पर भी कामना मनुष्य के मन को कभी तृप्त नहीं कर सकती। विषयों कामना उनके भोग करने से कभी शान्त नहीं हो सकती, बल्कि घी डालने से जैसे आग और भी उढ़ती है, वैसे ही भोघ मिलने से कामना की आग भी अधिक भड़कती है।

मानव जीवन का लक्ष्य तो उस सर्वोपरि सुख की प्राप्ती है जो अखन्ड, अनन्त पूर्ण और सदा एक रस है इसलिए जिस पुरुष को वास्तविक सुख की चाह हो, उसे भोग तृष्णा का दमन करके भगवान् के विधानानुसार जो कुछ भी सुख, दुःख प्राप्त हो, उसीं में सन्तुष्ट रहना चाहिये। तृष्णा नाशपूर्वक सन्तोष जैसा सुख है वैसा सुख परलोक में किसी भी भोग में नहीं है।

सन्तोष साधन से मनुष्य की भोग लालसा शान्त होती है, वह परमात्मा पर विश्वास करके सत्य तथा न्याय के मार्ग से जीवन निर्वाह करना सीखता है, और सत्य की रक्षा के लिए प्राणों तक को निछावर कर सकता है। परमात्मा ही एक मात्र सत्य है और उसकी प्राप्ती ही मानव जीवन का एक मात्र उद्देश्य है इस सत्य को पाने के लिए सन्तोष की साधना करना परम आवश्यक है।

सन्तोष की साधना दो प्रकार से होती है एक आत्मा के स्वरूप को समझ कर आत्मा की पूर्णता में विश्वास करने से

ओर दूसरा परम मंगलमय सर्वशुद्ध भगवान् के विधान पर निर्भर करने से। अर्थात् एक ज्ञानियों का मार्ग है दूसरा भक्ति का। गीत १२-१४-१९

उपासना क्यों करनी चाहियें

जो आत्मा पाप चरणों से रहित और सदाचारों से, संभूषित और विवेमी है, वहीं स्वाधार शरीर को जगत् में श्रेष्ठ और पूज्य बनाता है। अतः हे मनुष्यों ! आत्म कल्याण के मार्गों के तत्व—विद् पुरुषों की शिक्षा पर चल कर अपने को सुधारों।[1] जब ईश्वर अन्त में इस अनन्त सृष्टि को समेट लेता है तब अल्पज्ञ जीवों को यह देख आश्चर्य प्रतीत होता है। जब ही उसमें जीव श्रद्धा और भक्ति करता है।[2]

मनुष्य की देखभाल और जिसको शरण में हो सकती है, स्पष्ट है कि अजर, अमर परमेश्वर की शरण में अपने अन्तः-करण में उसकी अनुभूमि प्रत्यक्ष करना ही उसकी शरण में पहुँचना है।

आनन्द—मानव आनन्द की तलाश में रहता है। आनन्द प्राप्ति के लिये ध्यान कहा गया है। सुखपूर्वक प्रेरक और देवों

---

१ अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये।
न य धूर्वन्ति धूर्तयः।। ऋग्वेद ८ ४५,९।।

२ अपि वत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्र वाह्वे।
अत्रादेदिष्ट पौंस्यम्।। ऋग्वेद ८-४५,२६।।

३ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्। आशुं जेतार हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रया वृधम्।। ऋग्वेद ८-९९-७

को चाहने वाला तथा कार्य में संयुक्त करने वाला परमात्मा काम, क्रोध आदि राक्षसों को नष्ट करता हुआ, उपासक के पवित्र हृदय में प्रकट होता है। हमारी इन्द्रियाँ जो देवता कहलाती हैं, उनके पीछे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि राक्षस बंधे हुए हैं। यह शत्रु बिना परमेश्वर की उपासना एवं भक्ति के और अपने आप को परमेश्वर के अर्पण किये बिना नहीं जीते जा सकते हैं।

उनका एक बड़ा शक्तिशाली कैबिनेट है, उनका प्रधान मन्त्री अहंकार है। अर्थात् ८ मन्त्री उसके आधीन हैं। यह जीव सदा रथ पर सवार रहता है, परन्तु यह भयंकर शत्रु सदा उसे बींधते रहते है। और सदा जीव पीटा जाता है और चुपचाप रहता है। उस समय जीवात्मा को शान्ति आती है जब वह परमेश्वर की शरण में आ जाता है। यानी सुषुप्ति की अवस्था में कोई इन्द्रिय काम नहीं करती, सम्बन्ध होते हुए भी उस समय के लिये विच्छेद हो जाता है। परमेश्वर की शरण में जाकर प्रातः जब जागृत होता है, कहता है 'ओह क्या आनन्द की निद्रा में सोया।"

वासनायें भगवान् की उपासना में हमें वासनाओं के अन्त के लिये पूर्ण शक्ति लगानी होगी। महान् कठिन कार्य है। इसी से इसे परम पुरुषार्थ कहते हैं। हमें अपनी समस्त शक्तियां इसमें लगानी चाहियें तब कहीं इस मार्ग में सफलता मिलती है। यदि इन्द्रिय निग्रह यानी बाह्य इन्द्रिय निग्रह से वासना का अन्त नहीं होता, अर्थात् निरोध शक्ति इस कार्य को करने में असमर्थ है, तो ज्ञान शक्ति को भी पूर्ण रूप से इस कार्य में लगाना चाहिये। हो सकता है कि सम्पूर्ण निरोध शक्ति एवं

ज्ञान शक्ति लगा देने पर भी सिद्धि न मिले । दोनों के लिये इन्द्रियां बलिष्ठ साबित हों और हमें कामयाबी न मिले । इस लिये तीसरी अमोघ शक्ति बतायी गयी है, वह है भक्ति । निरोध शक्ति और ज्ञान शक्ति का पूर्ण उपयोग करो और यदि कार्य पूरा न हो तो मेरी (भगवान् की) शरण जाओ । वासना क्षय के प्रयास णें जब निरोध शक्ति और ज्ञान शक्ति धीमी पड़ती है तब भक्ति का उपयोग होता है । अर्थात् निरोध शक्ति और ज्ञान शक्ति के पूर्ण उपयोग के बाद भी द्वन्द्व मोह, दूर नहीं होते, तब शक्ति काम आती है । (कल्याण)

शान्ति :—अशुभ चिंतन. मनुष्य को कभी नहीं करना चाहिए । अशुभ चिन्तन करना अपनी आत्मा का दुरुपयोग करना है और भय तथा विपत्तियों को पुकार-पुकार कर बुलाता है । अपने मन में किसी के प्रति भी जरा सा भी द्वेष या हिंसा का भाव नहीं होना चाहिये । इससे अपना ही नाश है, किसी पर एहसान नहीं । जो शत्रुओं को प्यार की नजरों से देखता है जिसके हृदय में शत्रु के लिये भी शुभचिन्तन की सम्पत्ति है, वह भगवान् को बडा प्यारा है और वही आनन्द में है । उसके हृदय में जलन नहीं होती और सदा शान्ति विराजती है ।

प्रभु की उपासना से ही आध्यात्मिक शान्ति मिलती है । ब मानव को जगत् में किसी भी प्राणी का मांस किसी भी ामित्त नहीं खाना चाहिए । इससे लोक-परलोक दोनों बिगड़ते । सुख-दुख प्रिया प्रिय इन सब कामों में जैसा अपने लिए अच्छा समझता है वैसे ही दूसरों के लिए ही समझना चाहिये । ुष्य अपने लिये जो सुख सुविधा अपने लिए चाहे वही दूसरों

के लिए सुलभ करावें।

शान्ति कहीं बाहर से नहीं आती है। मोह, ममता, अभिमान, अहंकार, राग, द्वेष, लोभ अपने अन्दर से नष्ट करने पर शान्ति मिलेगी। यह भगवान् के प्रत्येक विधान की निश्चित विश्वास होने पर। यह दोनों कार्य हमारे आधीन हैं। बाहर का कोई व्यक्ति हमें कुछ समझा सकता है। हम उनके सहज सौहार्द पर विश्वास करके जीवन में उनको अनुकूल आचरण करना है। हम भोगों पर विश्वास करते हैं, इसलिये भोगों की चाह करते रहते है, तथा मिलने पर अधिक कामना करते हैं। न मिलने पर कामना पर आघात होता है, और मिली हुई वस्तु के चले जाने पर उसके शोक से सदा जलते रहते है।

मनुष्य अपने कल्याण के लिये प्रभु की उपासना करता है। वह तो दैनिक कर्त्तव्य है। इसके न करने से कर्त्तव्य हनन है। अपराध न करना ही बुद्धिमता है। ओम, जाप, गायत्री मन्त्र द्वारा प्रभु पूजन करना सदा आर्यो की रीती रही है। उसी शैली का अनुकरण करके सन्घ्या का विधान किया और वेदों का स्वाध्याय करना बताया है। ऐसा करने से अन्तकरण की शुद्धि, पवित्र बुद्धि होकर मनुष्य जीवन ओरो के लिये हितकर होता जाता है। मानव आत्मकल्याण के मार्ग पर चलने वालों को आर्ष ग्रन्थों का स्वाघ्याय करना ही है। उनका भी एक क्रम है। अर्थात् श्रवण, पठन, मनन, निदिघ्यासन। मानव कष्टों के छुटकारा पाने के लिये प्रभु की उपासना करता है, जिस उस ईश्वर में समस्त विद्वानों मेधावी पुरुषों के ज्ञान और कर्म आश्रित हैं। अर्थात् परमेश्वर सर्वज्ञ और सर्वअन्र्यामी है। जो सब विद्वान पुरुषों के ज्ञान और कर्मो को जानना है। तीनों लोकों में

परमेश्वर को आप लोग विद्यमान जानकर उपासना करो।

उपासना में बाधक कारण

स्वार्थ:—जबतक स्वार्थ है, तब तक सेवा में त्रुटि रहती है। भगवतप्रेमी का अपना कोई स्वार्थ नहीं रहता, इसलिये उसकी जान अनजान में की हुई प्रत्येक क्रिया स्वाभाविक ही लोक का उपकार करने वाली होती है और वस्तुत: ऐसा पुरुष ही सच्चा स्वार्थी है, क्योंकि उसका प्रत्येक कार्य "स्व" (आत्मा) के हित अर्थात् परमात्मा के लिये होता है। इसीलिये वह कोई अहितकर कार्य नहीं कर सकता। क्योंकि उसके मन में तो अपने अतिरिक्त कोई दूसरा रहता ही नहीं। सभी आत्मस्वरूप ही दीखते हैं।

पर विषय प्रेमी मनुष्य ही स्वार्थी कहलाता है यद्यपि वह तत्वत: स्वार्थी नहीं होता। जो अपने उपर विपत्ति बुलाता है वह स्वार्थ का (स्व अर्थ का) अपने हित का साधन कैसे समझा जा सकता है? वह तो इन्द्रियों के भोगों को बटोरने में ही, धन, स्त्री, स्वादिष्ट, भोजन, यश मान आदि के संग्रह करने में ही लगा रहता है। और उसी को ही अपना स्वार्थ समझता है। परन्तु इस बात को भूल जाता है कि इन्द्रिय और विषयों के सहयोग से मिलने वाला सुख अन्त में विषवत दु:ख-दायी होता है। परिणाम में नरक तो है ही। भला इसको स्वार्थ कैसे कहा जा सकता है। इसमें तो स्वार्थ का अपने हित का नाश ही होता है। परन्तु जब तक यह स्वार्थ रहता है तब तक यथार्थ स्थायी सुख कभी नहीं मिल सकता। यही इस स्वार्थ का मूल दोष है। इसलिये जहां तक बने विषय सुख जानत स्वार्थ का

त्याग करो। अपने शरीर मन, बुद्धि और अपने कहे जाने वाले सब पदार्थ परमात्मा के चरणों में अर्पित कर दो।

जब तक साधक धारणा—ध्यान, समाधि आदि धर्मार्थ, काम, मोक्ष साधक व्यवहार में मन नहीं लगाता तब तक सर्वदा सह स्थित भी परमेश्वर अनुभव नहीं होता परम प्रभु को सदा उपस्थित समझते हुए ही सब सत्कर्म करने चाहियें।1 विद्वान जन जो मनुष्य सृष्टिकर्ता परमेश्वर को वेद वाणी को नहीं जानता और भगवान् की भक्ति नहीं करता है उस कुत्ते स्वभाव वाले मनुष्य का परित्याग कर दो जैसे ब्रह्म ज्ञानी सकाम कर्म का परित्याग कर देता है।2

परमेश्वर ने हमें शरीर रूपी नौका इस संसार सागर के पार उतरने के लिये दी है। यदि सागर में लहरे आ जावें लपेट में नौका हो परन्तु साधन नहीं है तो कैसे पार उतरेंगे। नौका का बेझ दान और चप्पू यज्ञ है। तथा सौगानी डण्डा है। शरीर रूपी नौका में एक चप्पू पृथिवी यज्ञ है, और दूसरा चप्पू यज्ञ कहलाता है। चप्पू से नौका को मनुष्य आगे ले जाता है। जो माता पिता की सेवा नहीं करता उसका एक चप्पू टूट जाता है। और जो अतिथि को नहीं खिलाता है, उसका दूसरा चप्पू टूट जाता है। माता-पिता ने जिस रूप से हमारी सेवा की है उसी रूप में हम उनकी सेवा अवश्य करें। इस अधोगति से बचने के

---

१ यद्व नूनं यद्वा यज्ञः यद्वा पृथिव्यामधि।
अतो नो यज्ञ माशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ऋ.८-४६।

२ प्र मन्त्रा नायान्धसो मर्तो न वष्ट तद् वचः।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगव ॥ साम० मन्त्र ७७

लिये पितृ यज्ञ करें। परमेश्वर की प्राप्ति में माता-पिता के मध्य में एक द्वार है जो माता पिता के ऋण से उऋण नहीं हो जाता है उसकी अधोगति होती है।

उदाहरण —एक व्यक्ति ने माता का ऋण चुकाना चाहा। एक दिन उस मनुष्य ने ऊपर गेहूं के दाने और नीचे रुपये दबा दिये। कहा कि "माताजी ! तू जितना चाहे दान करदे, मेरा ऋण चुक जाय ? कई दिन ऐसा कहता रहा। आखिर एक दिन माता ने कहा, बच्चू ! यदि मेरा ऋण चुकाना चाहता है तो आज रात को मेरे पास सो जाना। शरद ऋतु थी। दिसम्बर का महीना था। वह मनुष्य माता के पास सो गया। आधी रात होने पर माता ने कहा कि मुझे प्यास लगी है पानी लाओ। वह मनुष्य उठा और पानी ले आया। मां ने पानी का पीना तो क्या था गिलास मुंह से लगाया और ढकेल दिया और बिस्तर पर पानी बिखर गया। मनुष्य सोने लगा पर बिस्तर गीला था। मां ! यह तूने क्या किया ? बच्चू अन्धेरे में गिलास हाथ से छूट गया। मनुष्य ने कुछ नहीं कहा। चुप करके बैठ गया। मां ने एक घंटे बाद जगाया और कहा, टोडर ! मुझे प्यास लगी है। टोडर लाचार होकर उठा और दूसरे गिलास में पानी ले आया। मां ने फिर वही खेल खेला। टोडर सोने लगा, अब तो सारा बिस्तर गीला हो गया था। लाचार, विवश होकर एक किनारे सो गया। दो बजे के बाद मां ने फिर जगाया। इस बार हिला कर जगाया। टोडर ने कहा मां क्या है ? सोने नहीं देती ? प्यास लगी है पानी ले आ। क्या तूने मछली खाई थी जो प्यास नहीं बुझती ? विवश होकर पुनः पानी ले आया और मां ने पुनः वही खेल खेला। टोडर ने कहा मां तुमने मुझे तंग करने के लिये अपने पास बुलाया था। बस बस ! तेरा ऋण

चुक गया। तू अपने बचपन को याद कर कि मैंने तुम्हें कितने कष्टोंसे पाला पोसा है। तू गर्भ में था। मैंने ज्योतिषीयों से पूछा कि मेरे गर्भ में लड़का है वा लड़की है। कहा लड़का। तभी से मैं तेरी देखभाल करने लगी। खाने, पीने, आराम, शयन आदि पर ध्यान देने लगी। तेरे पैदा होने पर मैंने कितना कष्ट उठाया। उसको एक मां ही जानती है। मैं खुद गीले बिस्तर पर सोती थी और तुम्हें सूखे बिस्तर पर सुलाती थी। अब बता क्या तेरे गेहूँ मात्र के दानों से मेरा कर्जा चुक गया। टोडर मां के पैरों में गिर पड़ा और क्षमा मांगने लगा।

कामना—मानव कामनाओं से जकड़ा हुआ, आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। वर्तमान जीवन एक लम्बी जंजीर की एक कड़ी है पिछले जन्मों के संस्कार उसकी स्थिति को निश्चित करते हैं। उस चक्र से छूटने का उपाय ब्रह्मज्ञान ही है। वेदशास्त्रों के जानने मात्र से ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता, किन्तु शास्त्रों को पढ़ने उनमें लिखे अनुसार अनन्यचित्त होके जब ब्रह्म की उपासना करता है तब यह प्राणी आत्मज्ञान से होने वाले सुख का भागी होता है और प्रसन्न हुआ ब्रह्म भी उसको अपने स्वरूप का प्रकाश कर देता है। यह आत्मा प्रवचन से प्राप्त नहीं होता, न बुद्धि के द्वारा, न बहुत सुनने से मिलता है। न बलहीन को, न दुराचारी व्यक्ति को जिसका मन शान्त नहीं है। यह तप और त्याग से भी प्राप्त नहीं होता।[1]

आत्म सिद्धि किसी अन्य मनुष्य की देन नहीं। कोई

---

१ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्॥
कठो० २–२३

दूसरा हमें मार्ग बता सकता है। मार्ग पर चलना हमारा काम है। दूसरों का उपदेश हमें यह बता सकता है कि कर्तव्य किधर है और मार्ग कौन है; मार्ग पर यत्न तो हमें अपने आप करना होता है। बुद्धि भी मार्ग को दिखाती है, परन्तु तर्क में इतनी फंस जाती है कि आगे चलने का अवसर ही नहीं मिलता है। कर्म प्राप्ति का साधन यह है कि मनुष्य पूरे यत्न से उसमें लग जाये। ऐसा करने पर परमात्मा अपने आप को प्रकाशित कर देता है। ज्ञान को अपेक्षा संकल्प को अधिक महत्व दिया है। जो कोई इसे जानने का प्रयत्न करता है उसे यह प्राप्त होता है अपितु वह परमात्मा जिसको वरण कर देता है उसी भक्त पर अपने स्वरूप का प्रकाश करता है।[1]

परमेश्वर को कैसे जानें ?

परमेश्वर जाना जाता है आनन्द से। कोई प्राणी ऐसा नहीं जिसको आनन्द न मिलता हो। मनुष्य तो परमेश्वर की भक्ति से आनन्द को प्राप्त कर सकता है। परन्तु पशु, गधे आदि कामरीति के अन्दर मना रहे हैं और मूढ अज्ञानी निद्रा में आनन्द मान रहे हैं। जब गाढ़ निद्रा आई तो कहता है कि खूब आनन्द से सोया। परन्तु भाई आनन्द तो प्रभु भक्ति में है और उसको प्राप्त करने का साधन परमेश्वर ने यह मनुष्य देह रूपी नौका दी है। परमेश्वर सुख देता है। इस शरीर को पृथ्वी माता से और सूर्य पिता से। हमारी आत्मा को परम सुख माता पिता के बिना नहीं। उपनिषद् कहती है, जो मनुष्य हर

---

१ नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैन माप्नुयात्॥ कठो० २–२४

वस्तु में ईश्वर को और हर वस्तु को ईश्वर में देखता है वही आनन्द का भागी है। यजु० ४०-६)

उदाहरण—एक व्यक्ति एक शीशी ले जा रहा था। उससे पूछा गया "इसमें क्या है?" उसने उत्तर दिया—"मधु-शहद है।" दूसरा व्यक्ति एक मर्तबान ले जा रहा था। उससे भी पूछा गया "क्या ले जा रहे हो?"—तो पता चला इसमें भी शहद है। तीसरा व्यक्ति एक और प्रकार का बर्तन ले जा रहा था, उसमें भी शहद ही था। साधारण व्यक्ति बर्तन को देखता है। परन्तु 'विजानतः' विशेष ज्ञानी—योगी, सन्यासी बाहर के पात्र को न देखकर उसके अन्दर भरे हुए शहद को देखता है। ठीक इसी प्रकार विशेष ज्ञानी पुरुष, हाथी, घोड़ा चोर, डाकू, चाण्डाल और पतित स्त्रियों में प्रभु के दर्शन करता है।

वाणी और इन्द्रियों! तुम उस रक्षक शरीर रक्षक परमेश्वर के सम्बन्ध में उपासना में वचन बोलो। यह पृथ्वी श्रेष्ठतम कर्म का फल देने वाली है। पिता परमेश्वर तथा पृथ्वी माता यह दोनों प्रकाशमय पद मोक्ष को प्राप्त कराने के साधन हैं।[1]

भक्त की धारणा—कर्म के प्रत्येक फल में भगवान् की दया को देखना चाहिये। यह समझना चाहिये कि मुझको इस काम में सफल नहीं किया। काम हो जाता तो मैं फंस जाता। काम होने पर यह विचार करना चाहिये कि यह मेरे पुरुषार्थ का फल नहीं है। और मुझे उसमें कोई आसक्ति या फल की

---

१ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया॥ सामवेद मन्त्र १६०१

कामना भी नहीं करनी है । भगवान् ने इस काम में दया करके ही मुझे नियुक्त कर दिया है । अतएव भगवान् की आज्ञानुसार भगवान् की प्राप्ति के लिए उत्साह, सावधानी, धर्मपूर्वक, सत्य और न्याय को साथ रखते हुए मैं यह सेवा करूँगा । और काम न होने पर न होने मे ही कल्याण है । अतः भगवान् ने नहीं होने दिया । यह विश्वास करके आनंदमय रहना चाहिये । काम में होने और न होने दोनों में सी हर्ष विषाद विकार न आने देना में ही भगवान् की कृपा का अनुभव करना चाहिये । काम न होने में जैसे दुःख का विकार होता है वैसे ही होने में सुख का विकार होता है । विकार होते ही भगवान् की विस्मृति हो जाती है न होने से तो भगवान् स्मरण होता भी है परन्तु होने से भगवान् का स्मरण छूटना बहुत सम्भव है । अतः एक किसी भी स्थिति में विचार न आने देना, सदा प्रभु की स्तुति बनी रहे। प्रभु का स्मरण करते हुए ही प्रभु के सौंपें हुए कार्य को करें। ऐसी साधक की धारणा होनी चाहिये ।

प्रभु को अपने पिण्ड में अपने शरीर, और भिन्न-भिन्न अंगों में विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचे की परमात्मा सर्वज्ञ परमहितकारी, और दयालु वही है । उसकी दया इस लायक बना देती है कि हम शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय से उचित रीति से लाभ उठा सके । (सन्ध्या में । इन्द्रिय स्पर्श के दूसरे मन्त्र में हम ईश्वर को अपने शरीर के अत्यन्त समीप अवयवो में देखते हैं । उसको देखने के लिये हमको दूर नही जाना है। उसकी इस सत्ता की अनुभूति का आरम्भ अपने शरीर से ही करना चाहिये । सन्ध्या इस भ्रम को दूर करती है कि आंख कान आदि से जो देखते हैं व सुनते हैं, उसमें ईश्वर विद्यमान

है। उसमें परमात्मा की शक्ति है। जब हमे समझने लगे तो मन में ऐसे दयालु ईश्वर को जाननें की इच्छा उत्पन्न होगी। बच्चों को यह भक्ति सिखाने का सबसे अच्छा साधन है।

अपने शरीर से चलकर हमारी नजर ब्रह्माण्ड तक जाती है। यह समस्त सृष्टि एक बहुत बड़ा शरीर है। वह केवल मेरे शरीर के लिये नहीं बल्कि सब जीवों के लिए है। जैसे आंख, केवल मेरी आंख है सूर्य्य चन्द्र संसार के जीवों की आँख है। यदि ईश्वर जैसी कोई दयावती शक्ति हमारे ऊपर न होती तो इतनी बहुमूल्य आँखें हमको कौन देता। ऋ०१०-१६० मं०१ २-३

ईश्वर की सत्ता की महिमा की अनुभूति हमको मानव समाज से भी होती है। यह मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। लेकिन वह इस आजादी के नशे में आकर संसार को नष्ट-भ्रष्ट न कर दे, अतः कर्मफल दाता और है महाबली है। इसलिये यह प्रभु अधिपति के रूप में समस्त मनुष्य स्वस्थान पर अधिपति रखता है। वाणी में ईश्वर की शक्ति है, इस वाणी को जिसको हम अपनी कहते हैं। समस्त जगत् भी भौतिक है। और समाज में भौतिक और आत्मिक दोनों का समावेश है। समाज केवल केवल भौतिक नहीं है।

ईश्वर की महिमा का दृष्टिगोचर मनुष्य, पशु, पक्षी अद्भुत खिलौने हैं। वह कठपुतली नहीं हैं। वह किसी मिट्टी के बर्तनों या खिलोनों की दुकान नहीं। माता और बच्चों के सीधे सम्बन्ध पर, पत्नी पति के परस्पर सम्बन्धों को और यह भी सोचिये कि माता, पुत्र, पति पत्नी के दो आत्माओं के अतिरिक्त क्या कोई और भी शक्ति है? जितना विचार आपका

इन बातों की ओर जावेगा उतना ही आप ईश्वर का ध्यान करने लगेंगे।

प्रारब्धवश जो सम्पत्ति, लक्ष्मी, विद्वत्ता प्राप्त हुई है, उसका दूर तक सद्व्यय करो, आवश्यकता के अनुसार ही प्रयोग करो। सद् व्यवहार अपने पराये का भेद भूल कर करो। नास्तिकता के संग से बुद्धि तर्क वितर्क से कुतर्क में चली जाती है। फलतः बिश्व व्यवस्था की मर्यादा में दुर्बल होने लगती हैं। भगवान् के भक्तों को उचित है कि वह अपने अधिकार, धन, परिवार आदि सामग्री को ईश्वर की ही समझकर, उसकी आज्ञा के अनुसार, उसी के कार्य में लगाने की न्याययुक्त चेष्टा करें। और जो भी नवीन कर्म अथवा क्रिया करें उसकी प्रसन्नता और आज्ञा के अनुकूल ठीक उसी प्रकार करें, जिस प्रकार बन्दर नट की इच्छा और उसकी आज्ञानुसार करते है।

परमात्मा सर्वोत्तम है, विचारणीय है, । यदि हम उदर पूर्ति के कार्यों में लग गये तो आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। आत्मा को जरूरत है आनन्द की। प्रकृति के पास वह वस्तु नहीं है जिसकी आत्मा को जरूरत है। आत्मा प्रकृति और जीव दोनो से उत्तम है, आत्मा को जानकर हम सत्य यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

ईश्वर पर मनुष्य का विश्वास एकदम नहीं हो जाता है। संसार में कोई विद्या, कोई काम, कोई कला, बहुत दिनों के अभ्यास के बाद होता है। जिस प्रकार वर्षो में बच्चा चलना, बोलना सीखता है, दूसरी भाषाओं का ज्ञान दीर्घकाल के बाद

प्रदत्त दान द्वारा—श्रीमती सरला देवी गुप्ता, ए-३५, न्यू कैलाश कालोनी, न्यू दिल्ली-४८

होता है। ईश्वर उपासना की योग्यता भी एक उपदेश से एक-दम उत्पन्न नहीं हो सकती है। यह कैसे सम्भव है कि मनुष्य एक उपदेश को सुनकर ईश्वर से प्रेम करने लगे। सूर्य का प्रकाश हर चीज को प्रकाश देता है, अपितु न केवल दर्पण में पेड को।

ईश्वर के साथ कोई न कोई सम्बन्ध जोड़ लीजिये। ईश्वर की अखण्डता को हृदयङ्गम करके उसके साथ नाता जोड़ लीजिए। वास्तव में ईश्वर जीव का सम्बन्ध जो नित्य ही जुड़ा हुआ है। किन्तु अज्ञानवश हमें उसका अनुभव नहीं हो रहा है। ईश्वर हमारी माता, पिता, बन्धु, सखा, भ्राता एव प्रियतम सब कुछ है। (ऋग्वेद ८-९-८-११) अपने को जो सम्बन्ध प्रिय लगे वही सम्बन्ध जोड़ लीजिए। जगत् के लोगों से हमने सम्बन्ध बनाये रखे हैं। वे सब सम्बन्ध अनित्य है क्षणिक शरीर के साथ ही और पहले भी टूट जाने वाले है किन्तु ईश्वर सनातन उसका स्नेह उसका नाता भी सनातन है। उससे टूटने और छूटने का डर नहीं है, भय नहीं है। ईश्वर आपका है और आप ईश्वर के हैं। जिस तरह रिझें हर कीमत पर रिझायें। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि ईश्वर की इच्छा का पता किस प्रकार चले? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि आप इस सम्बन्ध में ईश्वर से पूछ सकते हैं। वह आपके हृदय में विराजमान है।

हमारे लिये क्या करना उचित है और क्या अनुचित है—यह बात आप अपने हृदयस्थ परमात्मा से यदि जानना चाहोगे तो वह न्यायकारी प्रभु अपने हृदय से सत्प्रेरणा ही करेंगे। जब

प्रदत्त दान द्वारा श्री बी०पी० तलवार, एन. १० साउथ एक्सटैन्शन, न्यू दिल्ली—४९

कोई व्यक्ति सद्भाव से अन्तरात्मा से परामर्श लेता है तो उस पवित्र आत्मा द्वारा सत्य परामर्श ही प्राप्त होता है। साधारणतः जैसे कोई अपनी आत्मा से पूछता है कि चोरी, व्यभिचार, झूठ और कपट आदि कर्म कैसे हैं? तो उसका उत्तर मिलता है कि त्याज्य हैं निषिद्ध हैं। इसी प्रकार ब्रह्मचारी अहिंसा और सत्यादि के विषय में सम्मति मांगने पर यही उत्तर मिलता है कि अवश्य मान्य है। किन्तु अज्ञान राग द्वेष, और संशय आदि दोषों द्वारा हृदय के आच्छादित रहने पर किसी विषय में निश्चित उत्तर नही मिलता। अतः ऐसे अवसर पर अपनी दृष्टि में जो भगवान् के तत्व को जानने वाले महापुरुष हों उनके द्वारा बतलाये विधान को ईश्वर की आज्ञा मानकर अनुकूल आचरण करना चाहिए। आप्त पुरुषों के आप्त वचन ईश्वर की आज्ञा के समान ही होते हैं। शास्त्रों द्वारा उसकी आज्ञा जान लो। जो ईश्वर को अभीष्ट हो, वैसा ही करो। जो उसे प्रिय नहीं है उसे छोड़ दो। सदा उसके अनुकूल चलें उसके होकर रहें। यदि ऐसा हुआ तो आप को अधिक चिन्तन नहीं करना पड़ेगा। वही आपके लिए योग-क्षेम का सारा भार अपने उपर लेकर वह सदा के लिए आपको निश्चिन्त कर देंगे।

भगवत् उपासना के भाव से हम कर्तव्य कर्म किये जायें। संसारमें जो कुछ है वह भगवान् का रूप है। जो कुछ हो रहा है सब भगवान् की लीला है। जब पृथ्वी पर अग्नि बरसने लगती है और ज्वालामुखी फटने से सैकड़ों शहर बरबाद हो जाते है। भूकम्प आते हैं बड़े-बड़े साम्राज्य देखते-देखते मिट जाते हैं। थोड़े ही दिनों में एक मनुष्य सितारे की तरह यशस्वी हो जाता है या राजा हो जाता है तो इनमें अद्भुत सत्ता सभी अनुभव

करते हैं। प्रभु की अपार लीला देखने वाले ज्ञानी इसमें आश्चर्य नहीं करते। अभी हाल की घटना देखने में आई है ता० ४-१-८१ रविवार के दिन सवापांच बजे इन्दौर में राजाजी भवन में पाँच मंजिला भवन एकदम धाराशायी हो गया, देखने वाले सब हैरान हो गये क्या थोड़ी सी देर में क्या से क्या हो गया। यही भगवान् की लीला है। प्रभु की अपार लीला देखने वाले ज्ञानी उसमें आश्चर्य नहीं करते वे अद्‌भुत से अद्‌भुत घटना में भी कार्य-कारिणी भाव को देखते हैं। इन आश्चर्यों को देखते हुए चकित होना छोड़ दो। किन्तु इन को देखकर इनके कर्त्ता को पहचानो। अब विशेष विभूति और पूज्य सम्बन्ध हो वही विशेष रूप से भगवान् की भावना करनी चाहिये। माता पिता को भगवान् का रूप समझकर उनकी सेवा करनी चाहिये और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये और उनको सुख पहुँचाना चाहिये। इन प्रत्यक्ष भगवत रूपों की पूजा करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। श्री स्वामी दयानन्द जी भगवान् की सच्ची पूजा घण्टों तक समाधि में बैठकर उनसे प्रेरणा लेते थे और उनकी आज्ञा के अनुसार कार्यक्रम बनाते थे।

भगवान् की रुचि की अनुकूलता के सिवाय और कोई रूचि न हो, भगवान् का चिन्तन छोड़कर उन्हीं के प्रति निवेदन की हुई एक प्रार्थना हो, हृदय में केवल उन्हीं का सिंहासन हो। शुभ कर्म, सेवादि उन्हीं के लिए हो। इस प्रकार सदा समर्पण हुआ करे। हम पर हमारा अधिकार न हो भगवान् का हो। हमारा हम उनके प्रति अर्पित हो जायें। हमारा मन, हमारी इन्द्रियां, सर्वदा और सर्वथा उन्हीं की वस्तु बन जाय और उन्हीं की सेवा में लगे रहें।

आओ हम उस प्रभु को ढूंढने का प्रयत्न करें। उसे प्राप्त करने के लिए काशी, मथुरा, मक्का-मदिना जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रभु के दर्शन हृदय मन्दिर में होते हैं। एक व्यक्ति ईश्वर दर्शन के लिए घर से चला चार धाम और सप्तपुरी सारे ही धाम घूम आया परन्तु ईश्वर के दर्शन नहीं हुए। एक दिन वह थक कर जब पुलिया पर बैठा था। वह दीन दुःखी और उदास सा वहां बैठा ही था कि एक महात्मा उधर आ निकले। इस व्यक्ति को उदास देख कर पूछा—क्या बात है? उसने उत्तर दिया—सारी दुनिया देख आया परन्तु कहीं भी प्रभु के दर्शन नहीं हुए।" महात्मा ने कहा—'अपने अन्दर भी तो देख। ज्यों ही उस व्यक्ति ने योग साधना आरम्भ की कुछ समय के पश्चात उस व्यक्ति ने अन्दर देखा तो प्रभु हृदय मन्दिर में ही दिखाई दिये। जिस प्रकार तिलों में तेल, काष्ठ में अग्नि, फलों में रस व्यापक होता है। उसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रजापति व्यापक है। जिस प्रकार तिलों में तेल आदि दिखाई नहीं देते और प्रयत्न करने से दिखाई देते हैं। उसी प्रकार परमेश्वर भी सर्व व्यापक और विद्यमान है और योगाभ्यास द्वारा प्रयत्न करने पर साक्षात्कार किया जा सकता है। परमेश्वर किसी स्थान विशेष में नहीं रहता है। किन्तु वह तो सर्व व्यापक है। इसका साक्षात करने के लिए किसी स्थान विशेष पर जाने की आवश्यकता नहीं है। केवल हृदय में उसकी अनुभूति प्राप्त की जा सकती है।

प्रकृति आत्मा और परमात्मा में खेल चल रहा है। प्रकृति आंखें बन्द करने वाली है, वह जीव की आंखें बन्द कर देती है। छिपने वाला परमात्मा है। ईश्वर जीव के अन्दर ही

छिप जाता है। जीव बाहर ढूंढता रहता है और उसे ढूंढ नहीं पाता है।

परमात्मा मिलता है। उसके दर्शन होते हैं, परन्तु हृदय गुहा में। इस विषय मे महर्षि दयानन्द ने कितना सुन्दर लिखा है—

"कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में उदर के ऊपर जो हृदय-देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश रूप एक स्थान है, और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर भर रहा है, वह आनन्द स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना विषय)

जब उपासक ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करता है तब उस का आत्मा शुद्ध पवित्र होकर बलिष्ठ हो जाता है। वह आत्मा अपने निकट पापों को कदापि आने नहीं देता है। उस अवस्था में वह अनेक पदों से भूषित होता है और मानों अपनी रक्षा के लिये सदा अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित रहता है। उस समय मानो, यह बुद्धि से पूछता है मेरे कितने और कौन-कौन शत्रु हैं इत्यादि इसका आशय है, इससे यह शिक्षा दी गई है कि आत्मा यदि तुम्हारा वास्तव में सखा है तो उसका उद्धार करना ही परम-

---

प्रदत्त दान द्वारा—श्रीमती चन्द्रवती, कुटिया नं० १४०, आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

धर्म है और उद्धार केवल कर्म और उपासना से हो सकता है।[1]

जब साधक अपनी साधना में परिपक्व होता है तो वह अनुभव करता है कि परमप्रभु अब शीघ्र ही मुझे प्राप्त होंगे— उनके और मेरे सान्निध्य में विघ्न डालने वाली कोई शक्ति नहीं है। परमेश्वर का आराधन मनुष्य को धर्म मार्ग से च्युत नहीं होने देता।[2]

जीवन में सर्वविध ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि साधक अपने आत्मा को एक क्षण भर के लिये भी न भूले आत्मतत्व को उसके यथार्थस्वरूप में जानता रहे। और इस साधना के बाधक कारणों को सदा नष्ट करता रहे।[3]

साधक जब सम्पूर्ण द्वेष भावनाओं पर विजय पा लेता है तभी उनका मन भगवान् के ध्यान में सम्यक् तथा संलग्न होता है और फिर धीरे-धीरे जब उसका अपना प्रबोध पकने लगता है, पूर्ण होने लगता है तब उपदेष्टा के रूप में वह उसे अंश-अंश करके बांटने लगता है।[4]

वेद वाणी द्वारा नित्य गुणगान करके प्रभु की शक्ति की अनुभूति अन्तःकरण में उद्भूत की जाती है। अन्तःकरण में उद्भावित प्रभु उपासक पर नित्य नये-नये अनुग्रहों की वर्षा करता है।[5]

ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के गुणों का निरन्तर, श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते रहना चाहिए—साधक को उसे ही अपना सबसे अधिक प्रिय समझना चाहिए। पदार्थों के ज्ञान के

---

१ ऋ० ८-४५-४। २ ऋ० ८-४६-८। ३ ऋ० ८-८२-१॥
४ ऋ० ८-९६-१४। ५ ऋ० ८/१०३/६॥

साथ-साथ उसका मसत्व जब हृदयङ्गम होगा तब वह भी अचानक उद्भुत हो जायेगा।

इस मन्त्र में दर्शाया गया है कि उपासक अन्त में ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है जबकि वह बहुत सी कल्याणकारी समृद्धि अर्जित कर लेता है, उस अवस्था में उसे चाहिये कि वह अर्जित को बनाये रक्खे यदि उसका यह क्षेम बना रहेगा तो फिर उससे दुर्भावनाएं दूर रहेंगी और वह सब प्रकार से उन्नति करता चला जाएगा, क्षेम शब्द के अर्थ के लिए गीता का श्लोक स्मरण रहना चाहिए।2

"तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।'

समर्पण

सच्चा समर्पण वही है जिसमें कुछ भी नहीं बचा रहे। जहां तक मनुष्य कुछ बचा रखता है, वहां तक समर्पण पूर्ण नहीं होता। पूर्ण, समर्पण करो, अन्त में खोज-खोज कर एक एक वस्तु उन्हें दे डालो, फिर देखो उनकी प्रेम दृष्टि से तुम किस प्रकार दिव्य आनन्द में सराबोर हो जाते हो। उस दिव्य आनन्द को पाना ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है। वही तुम्हारा स्वरूप है। तुम में दुख का लेश भी नहीं है। यह माया है उसे हटा दो। फिर तुम्हारा दिव्य आनन्द रूप तत्काल प्रकाशित हो जायेगा। माया तब तक नहीं हटती जब तक कि तुम उसे हटाना नहीं चाहते। माया ने तुम्हें नहीं बांध रखा है, तुम्हीं ने माया को पकड़ रक्खा है, छोड़ दो उसे—वह जिसकी है, उसे

---

१ ८/१०३/१०। २ ऋ० ८-८४-६॥

दे दो; बस, उसी क्षण तुरन्त मुक्त हो जाओगे। तू माया को छोड़ उनकी माया उन्हें सौंप कर परम शुद्ध आनन्दमय हो जाते हो। पर उसकी साधना शुरू करनी होती है, स्वार्थ त्याग से।

उपासना में हमें समर्पण करना होता है। अर्थात् अपने जीवन को, अपनी प्रवृतियों को व इच्छाओं को, अपने से बड़ी शक्तिशाली शक्ति के आगे अच्छी तरह से अर्पित कर देना है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण भारतीय पतिव्रता नारी का है। जो न केवल अपने परिवार और घर को छोड़ देती है परन्तु पति के नाम और परिवार को अपना मान लेती है। वह उसके जीवन में अपने जीवन को लीन कर देती है। वह पति की कीर्ति में अपनी कीर्ति समझती है। वह उसकी धर्मपत्नी है। धर्म की रक्षा करती हैं। पति को सदा शुभ कार्यों में प्रेरणा देती है। उसका कोई स्वार्थ नहीं होता। यह सच्चा समर्पण है।

प्रभु आप जानते हैं। मैं क्या हूँ, मैंने तो समर्पण कर दिया है, अपना आपा तेरे अर्पण करता हूँ। मैंने सब कुछ कर लिया है जो कुछ करना था। अब तो ले चलो। यह भक्त की अन्तिम स्थिति है।

जो अपने को प्रभु के चरणों में समर्पित कर देता है, उसमें प्रधानता से दो बातें आ जाती हैं—(१) निर्भयता (२) निश्चिन्तता। मृत्यु की विभीषिका का भी उसे डर नहीं। और स्वर्ग, नरक, सुगति, दुर्गति या मोक्ष की चिन्ता उसे नहीं, "योग: क्षेम वहाम्यहम्" भगवान् की इस अमर घोषणा को वह निरन्तर अनुभव करता है और पद-पद पर उसका प्रमाण भी पाता जाता है। जब हम उनके हैं, तब वह जो कुछ करें,

उसमें हमारा मंगल है। यह शरीर तो हमारा रूप नहीं है। यह तो उनका दिया हुआ वेष है। यह नहीं दूसरा सही । इसी में ममत्व क्यों ? इसके काल्पत सम्बन्धित में अपनापन कैसा ? उचित तो यही है, कि हम अपनी भूल को मिटा कर उसको आत्मसमर्पण कर दें ।

सुग्रीव ने जब अपनी समस्या के सम्मुख अपने को अशक्त अनुभव किया, तो सुग्रीव को श्री राम ने कहा—तुम लडो, मैं तुम्हें सहयोग दूंगा। पर प्रथम दिवस बाली के साथ युद्ध में सुग्रीव की हड्डी हड्डियां टूटने लगी तो वह श्री राम के समीप रोता हुआ आया और बोला कि आपने कुछ भी नहीं किया। जबकि मैं केवल आपके आश्रय पर लड़ा। तब श्री राम ने धीर बंधाई और कहा कि घबराओ नहीं। तुम लड़ो वीरता से। मैं तुम्हारा अवश्य सहयोग करूंगा। सहयोग तो मैंने पूर्व भी दिया था तब मेरा निशाना ठीक नहीं बैटा था। तब दूसरे दिन के युद्ध में श्रीराम ने बाली को समाप्त कर दिया। वहां उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का ही आश्रय लिया। ऐसे ही अर्जुन ने श्री कृष्ण का आश्रय लिया और उन्होंने उसके प्राण बचाये। ऐसे ही प्रभु भी पूर्ण समर्पित होने पर भी भक्त की सब प्रकार से सहायता करते हैं।

ओ मेरे जीवनदाता भगवान्! मैं किस मुंह से तेरे सम्मुख उपस्थित होऊ। तू समस्त संसार का वाली माली है। हरेक को कर्मानुसार भोग पहुँचाता है, सींचता है। मुझ जैसे कुकर्मी को भी भोग से वंचित नहीं करता और न ही भूलता है २४ घण्टे निरन्तर मेरे पास रहता है और मेरे कर्मों का निरीक्षण करता है। शुभ कर्म को प्रेरणा करते रहते हो। परन्तु मैं

आपकी आज्ञा की अवहेलना करता रहा और इसके लिये कठोर पश्चाताप करता हूँ। दया के सागर अब एक और दया कर दे और वह यह कि मेरी बागडोर तू ही संभाल लें, मैं अपने आप को तेरे अर्पण करता हूँ। सर्वस्य अर्पण करता हूँ क्योंकि मैंने तेरे व्रत को जान लिया है जो श्रुति के अन्दर तुने स्वयं उपदेश दिया। हे प्यारे! तेरा तो यह सत्य व्रत है कि आत्मसमर्पण करने वाले का कल्याण करता है। अतः मुझे यह पूर्ण निश्चय है कि तू मेरा अवश्य कल्याण करेगा। यही विनय है। उसे कृपया स्वीकार करें।[1]

जिस प्रकार न दुही बुधार गौएं (अपने प्रिय बछड़ों के सम्मुख आत्मसमर्पण कर देती है।) वैसे ही हम हे शूर इन्द्र! तेरे सम्मुख आत्मसमर्पण करते हैं। तू इस जगम और स्थावर का अधिष्डाता और सत्य लोक का दिखाने वाला है।[2]

उपासना का फल

उपासना से मन की शुद्धि होती है मन में राग ईर्ष्या, द्वेष से विक्षिप्त होती है। प्रभु में जब प्रेम बन गया, उन का नाम इतना प्रिय लगा है कि फिर भुलाये भी नहीं भूलता, छुडाने से भी नहीं छूटता। तब द्वेष न रहा तो मन शुद्ध हो गया, आत्मा साक्षात के निकठ आने लगा।

उपासना से बहुत उत्तम कर्म उदय होते हैं। सच्चा वैराग्य हो जावे, प्रभु कृपा के बिना, पूर्व संस्कारों से अपव्यय, कृपणता आदि अवगुण नित्य प्रति पडताल, वृत और प्रायश्चित से दूर होंगे, परन्तु अंश आन्तरिक रहेगा ही।

---

१ ऋग्वेद १/१/६। २ सामवेद मन्त्र २३३। (पू० ३-१-५-१)

आध्यात्मिक विद्या से आत्मिक विकास होता है। हृदय निर्मल, शुद्ध, पवित्र होता है। अविद्या की गाठें खुल जाती है, और सब बन्धन कट जाते है, जीवन में निर्भयता की प्राप्ति होती है, प्रसाद गुणो का विकसित होता है। लोक, परलोक सुधारते हैं मानव को शोक, मोह, नही रहता, सब संशय दूर हो जाते हैं। हमारा संशय और सन्देह घृणा के रूप में प्रकट होता है।

उपनिषद कहते है—जब मनुष्य प्रतिदिन ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये योगाभ्यास द्वारा यत्न करता है तब समाधि में परमेश्वर को साक्षात जान कर बासना रूप से बुद्धि में स्थिर भोग की कामना, उनके कारण, शुभ, अशुभ वा मिले हुए कर्म और वासना से होने वाले सब सन्देहों को निर्मूल नष्ट कर देता है उस समय सब बाधाओं से छुट कर निरुपद्रव शान्त हो जाता है। यजु० ४०-६ ।

प्रभु दर्शन से मनुष्य विनयी बन जाता है, वह प्राणी मात्र को अपना मान कर सभी से प्रेम करता है। उसके मन से भेद, भावनाएं मिट ही जाती है। वह घृणा और शोक से ऊपर उठ जाता है। जब मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति को प्रभु का निवास स्थान समझने लगता है, तब उसके जीवन में सभी प्राणियों के लिए आदर और सम्मान एवं प्रम की भावना जागृत हो जाती है। एक व्यक्ति एक मन्दिर के सामने सिर झुकाता है, साथ वाले मकान के सामने नहीं झुकाता। क्यों इसलिए कि वह मन्दिर को प्रभु का निवास स्थान समझता है. जब मनुष्य प्रत्येक प्राणी को प्रभु का मन्दिर समझने लगता है, सब भूतों में प्रभु का दर्शन करता है। फिर सन्देह और घृणा कैसी? वह तो घृणा से ऊपर उठ कर प्रेम पुञ्ज बन जाता है।

जब मनुष्य अणु-अणु और कण-कण में प्रभु के दर्शन करता है। जब उसे सर्वत्र प्रभु दर्शन होने लगते हैं, जब वह उस स्थिति में पहुँच जाता है जिसके लिये किसी कवि ने कहा है—"जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।" तब वह व्यक्ति स्वप्न में भी पाप नहीं कर सकता। पाप करना तो दूर रहा, उसके हृदय में पाप के भावों का उदय ही नहीं होता।1

उपासना योग साधनाओं का एक अंग है। श्वास के नियन्त्रण से अनेक चमत्कार लोगों के सामने आये है। योगी एक स्थान पर बैठे हुये दूसरे स्थान की बात जान लेता है। दूसरे के हृदय के भावों को जान लेता है।

ऐसी कई घटनाएं महर्षि दयानन्द के जीवन, योग सम्बन्धी आती है। एक बार एक सज्जन स्वामी जी के लिए अच्छा मिष्ठान लाया और उसको खाने के लिए कहा। स्वामी जी ने जान लिया कि इसमें विष मिला हुआ है। स्वामी जी ने कहा कि पहले तुम खाओ, उसने नहीं खाया और रखकर चला गया तब एक कुत्ते को वह भोजन डाला जिसे खाकर वह कुत्ता उसी वक्त मर गया।

एक आदमी ने कहा स्वामी जी! भजन, सन्ध्या में मन नहीं लगता। वह आदमी शराबी, कबाबी, और दुराचारी था। उसको कहा कि और विवाह कर लो।

स्वामी जी को एक बार वेद का पाठ याद नहीं हुआ। गुरु विरजानन्द जी नाराज हो गये। तब स्वामी जी ने तीन

प्रदत्त दान द्वारा—रूपचन्द एन्ड सन्स, पेपर मर्चेन्ट, चावड़ी बाजार, दिल्ली–६

दिन तक समाधि में यमुना के किनारे बैठकर ज्यों का त्यों पाठ का स्मरण हो गया और गुरु जी को सुना दिया।

आत्मा के स्वरूप का दर्शन होने पर भक्त नाच उठता है। सच्चा नाच तो वही है, जब भक्त अपने आप को भगवान् में पूरी तरह लीन कर दे। अपने अहंकार को, अपने अहं और सम्पत्ति को जो पूरी तरह शून्य कर देता है और भगवान् के हर विधान को मंगलमय मानकर मात्र उसकी इच्छा के अनुसार ही नाचता है। बस अपनी कोई इच्छा ही न रहने दे। अपने मालिक की ओर ही देखता रहे उसी के संकेतों पर अपने कर्तव्यानुसार नाट्य अभिनय करता रहे।

सिद्ध हठ योगी उनकी आयु चार सौ पचास वर्ष से ऊपर थी। वह पानीपत के पहली लडाई के समय १५२६ ई० में विद्यमान था।

अन्तिम सिख सम्राट महाराजा रणजीत सिंह ने एक हरिदास नामक साधु को लाहौर जेल में एक सन्दूक में बन्द कर के भूमि में गड़वाया था। छः सप्ताह तक वहां रात दिन विश्वास पात्र सैनिकों का पहरा रखा गया था। इसके बाद जब जमीन खोद कर और उसमें से साधु को निकाला गया तो, वे जीवित और स्वस्थ निकले। यह घटना १८३७ ई० में सर क्लाइव तथा हार्निग के सामने हुई थी। भारत सरकार के कागजात में उसका वर्णन सुरक्षित है।

कुछ, ६ वर्ष पूर्व उदयपुर राजस्थान में वैज्ञानिकों और डाक्टरों की देखरेख में इसी प्रकार की घटना घटी थी। इस परिक्षण में तो योगी के शरीर को वैज्ञानिक यन्त्रों से इस प्रकार

जकडे रखा था कि हृदय एवं श्वास क्रिया से जरा भी कम्पन होने से उसका पता चल सके। परन्तु कहीं कुछ नहीं हुआ। साधु समाज में जो योगियों के प्रति धारणा है उसका वर्णन यहां पर नहीं किया गया है।

उपसंहार

उपासना से मन की शुद्धि, पवित्रता होती है और हृदय की ग्रन्थियां खुल जाती है। उपनिषदों में ग्रन्थि के खुलने का अर्थ किसी दु:खद, समस्या का दूर होना है। हमारी प्रवृत्ति अविश्वास को अवस्था को समाप्त करने की होती है। किसी त्याज्य विश्वास के स्थान में किसी स्वीकार करने योग्य विश्वास के द्वारा ही चिन्तन है।

सशयों का निवृत्त होना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना मानव के लिये हृदय ग्रन्थियों का खुलना है। मानव के भेदभाव दूर हो जाते है और उसके अन्दर अद्भुत प्रकार की विनम्रता जीवन में आ जाती है। वह ऐसा व्यक्ति हर व्यक्ति को प्रभु का मन्दिर समझता है।

नाडियों के द्वारा उपासना की जाती है। उपासना केवल परमात्मा का ही विषय है। इसलिये अन्त:करण की शुद्धि का तीसरा उपाय उपासना कहा है।

॥ इति उपासना प्रकरणम् ॥

ओ३म् भज ओ३म् भज ओ३म् भज

आर्य [illegible]
[illegible] ३५

शुभ सम्मति

"अध्यात्म सुधा" के बाद श्री भूदेव वानप्रस्थी (पीतम चन्द गुप्त) जी की यह द्वितीय लघु–पुस्तिका है। इसमें उन्होंने 'प्रार्थना' और 'उपासना' अध्यात्म साधना के दो प्रमुख अङ्गों की, अपने अध्ययन, मनन, अनुशीलन एवं अनुभव के आधार पर, व्याख्या करने का सराहनीय प्रयास किया है।

कहावत है—'करत-करत अभ्यास ते, जड़मति होत सुजान' जब सतत अभ्यास से बुद्धिहीन प्राणी भी विद्वान् बन सकता है। तब प्रस्तुत पुस्तिका के रचयिता तो स्वयं ही बुद्धिमान पुरुष हैं। अतः उनका विद्वान बन जाना सहज ही सम्भव है। प्रथम पुस्तिका उन के सतत अभ्यास द्वारा विद्वान बनने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" मन्त्र का श्री भूदेव जी ने सम्यक् प्रकारेण अध्ययन और मनन किया है तथा उसी अध्ययन के सारभूत उन्होंने अपने ये दो पुष्प अध्यात्म-जगत को समर्पित किए हैं।

आशा है, न केवल अध्यात्मानुरागी जन अपितु सुधी–जन भी समानरूपेण इन सुकृतियों का अध्ययन करते हुए लाभान्वित होकर लेखक का उत्साह वर्धन करेंगे। जिससे कि वे अपनी अर्चना सतत जारी रखते हुए अपनी पुष्पांजली अध्यात्म–जगत को समर्पित करते रह सकें।

७–एफ, कमला नगर,
दिल्ली–११०००७,
दि० १०-३-१९८१

अशोक कौशिक
सम्पादक—शाश्वत–वाणी